मिन हीनता जनित रोग
मक्खन
दूध
ए
डी
बी
दूध
सी
डा.

सम्मति

पुस्तक में विभिन्न विटामिनों के कार्य तथा उनकी कमी से उत्पन्न होने वाले रोगों का अच्छा विवेचन किया गया है। कुछ आवश्यक चित्र भी दिये गये हैं। अन्त में विविध खाद्य पदार्थों की एक तालिका दी है जिसमें विटामिन की दृष्टि से उनका विश्लेषण किया गया है।

पुस्तक का विषय हमारे स्वास्थ के लिये बड़े महत्व का है। इस विषय की जानकारी सब के लिये आवश्यक है। कौन सा भोजन स्वास्थ्यप्रद है, और किस मात्रा में विविध विटामिनों का होना आवश्यक है इन बातों का जानना जरूरी है।

प्रस्तुत पुस्तक परिश्रम से लिखी गई है और सर्व-साधारण के लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

आचार्य नरेन्द्र देव
२५-११-४७ कुलपति
लखनऊ विश्वविद्यालय।

मूल्य
२)

विटामिन

और

हीनता जनित रोग

डा० सुरेन्द्र नाथ
एम० बी० बी० एस०
लेक्चरर पैथॉलोजी विभाग
किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज लखनऊ

प्रकाशक
अवध-पबलिशिंग हाउस
लखनऊ

समर्पण

स्व० बिब्बी (माँ)

को

प्राक्कथन

हर एक मनुष्य का अधिकार है कि वह तन्दुरुस्ती के साथ जीवन बिताये। मगर आज हिन्दुस्तान की सेहत इतनी गिरी हुई है कि उमर की औसत केवल २४ साल है। पश्चिमी देशों में इस बात की कोशिश की जा रही है कि जनता को ऐसी सहायता मिले जिससे वह तन्दुरुस्त रह सके। सब में आवश्यक चीज़ जीवन में ख़ूराक होती है, जब तक सही तरह का खाना लोगों को न मिलेगा तब तक तन्दुरुस्ती क़ायम नहीं रह सकती। इस छोटी सी पुस्तक में लेखक ने कुछ आवश्यक बातों की ओर लोगों का ध्यान दिलाया है—मुझे आशा है कि इससे जनता लाभ उठावेगी।

विजया लक्ष्मी पंडित

लखनऊ

भू० पू० मंत्राणी
स्वास्थ्य-विभाग संयुक्तप्रांत।

भूमिका

सर्वसाधारण में आजकल विटामिन की इतनी चर्चा है कि प्रायः सभी इसके नाम से परिचित हैं। किंतु जनसाधारण में थोड़े ही मनुष्य इसका ज्ञान रखते हैं कि विटामिन क्या हैं और हमारे शारीरिक विकास में इनका कितना महत्व है।

हमारे पूर्ण स्वास्थ्य के लिये ही नहीं वरन् जीवन यापन के लिये भी यह नितान्तावश्यक हैं। इनका हमारे शरीर में होनेवाली विभिन्न रसायनिक क्रियाओं से विशेष सम्बन्ध है। इनका नितान्त अभाव भयङ्कर रोगों की उत्पत्ति करता है, किन्तु इनको आंशिक हीनता, जो सर्वसाधारण में बहुतायत से पायी जाती है, अनेकों साधारण रोगों के लिये उत्तरदायी है। इनका ज्ञान अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही है।

विटामिन की उपस्थिति, उत्पत्ति एवं हमारे शरीर पर उनका प्रभाव आदि कुछ प्रश्न इस पुस्तक में समुचित रूप से हल किये गये हैं। विटामिन की हीनता से उत्पन्न हुए रोग, दोष और उनका निदान एवं चिकित्सा का विस्तृत वर्णन भी लेखक ने किया है। मेरे विचार से जनसाधारण, विशेषतया स्त्रियों एवं हाईस्कूल कक्षा के विद्यार्थियों के लये यह पुस्तक अत्युपयोगी सिद्ध होगी। चिकित्सा-शास्त्र के विद्यार्थियों

के लिये भी यह पुस्तक उपयुक्त है, कारण कि इसमें इस विषय की प्रायः सभी प्रमुख नवीन अन्वेषण योजनायें वर्णित हैं।

मुझे पूर्ण आशा है कि यह पुस्तक हिन्दी जगत् में सुयोग्य स्थान प्राप्त करेगी।

बीर भान भाटिया

एम. डी., एम. आर. सी. पी. (लन्दन),
डीन फैकल्टी ऑफ़ मेडीसन,
लखनऊ विश्व विद्यालय,
प्रोफ़ेसर ऑफ़ मेडीसन
एवं
प्रिंसिपल मेडिकल कॉलेज,
लखनऊ।

विषयानुक्रमणिका

आधार-भूत ग्रन्थ

१ A Textbook of the Practice of Medicine.
F. W. Price

२. Vitamins in Medicine.
F. Bicknell.

३. Vitamins.
Harris.

४. The Rice Problem in India.
Indian Medical Research Memoir
No. 32.

५. Health Bulletin No 23.
Government of India.

६. Food the Deciding Factor.
Frank Wokes.

७. Applied Pharmacology.
A. J. Clerk.

८ शरीर रचना।
स्व० डॉ० त्रिलोकीनाथ वर्मा।

९. Applied Physiolgy.
Samson Wright.

१०. Lectures on Diseases of Children.
Hutchinson.

शुद्धि-पत्र

हमें खेद है कि अनेक सावधानियों के उपरांत भी इस पुस्तक में कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। पाठक पहले इन्हें सुधार लें।

पृष्ठ सं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	श्रृणूथाम	श्रृणुयाम
१	३	(शतमदीना)	शतमदीना
५	५	देक	देकर
५	१४	समय समी	समय समय
५	१५	विशेत	विशेषतः
७	४	पदा	पदार्थ
७	१३	वास्थ्य	स्वास्थ्य
५०	१३	३ मिलीग्राम	३ माइक्रो मिलीग्राम

मुद्रक

लेखक के दो शब्द

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं, ॐ शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः (शतमदीना) स्याम शरदः—शतं, भूयश्च शरदः शतात् ।

"मनुष्य का अधिकार है कि वह १०० वर्ष तक और इससे भी अधिक आयु का उपभोग करे। बहुत से लोग इस आयु को प्राप्त तो करते हैं, परन्तु उनके जीवन का अन्तिम काल भार-स्वरूप बन जाता है। शारीरिक बल क्षीण होकर देखने, सुनने और बोलने की शक्ति लुप्त हो जाती है। साधारण सी आवश्यकताओं के लिए भी दूसरों का आश्रित हो उनका मुँह ताकना पड़ता है।

वेद का आदर्श है कि हम १०० वर्ष तक आत्मावलम्बन और आत्म-सम्मान के साथ अवश्य ही जीवित रहें। मृत्युपर्यंत हमारी समस्त इन्द्रियाँ बलयुक्त और आज्ञाकारिणी हों। हम दीन होकर न रहें।"

एक समय था जब उपर्युक्त आदर्श और प्रार्थना भारतीय आर्यों के जीवन में सफल होती थी। प्राचीन भारत के आचार्यों,

ऋषियों, राजाओं और साधारण जनता का जीवन इसका ज्वलंत उदाहरण है। तब राष्ट्र और जाति अपने स्वास्थ्य से निश्चिन्त हो अपनी कर्तव्य-साधना में निरत रहती थी।

परन्तु काल के कुटिल चक्र में पड़कर आज हमारे देश की व्यवस्था कुछ और ही है। निरावलम्ब स्वतन्त्र जीवन आज एक सपना हो चुका है। हमारी आयु १०० वर्ष से घट कर २६ वर्ष ही रह गई है।

संसार के कुछ देशों के निवासियों की औसत आयु

देश	समय	पुरुष	स्त्री
आस्ट्रेलिया	१९०१–१९१०	५५.२०	५८.८४
डेनमार्क	१९०६–१९१०	५४.९०	५७.९०
नारवे	१९०१–१९१०	५४.८४	५७.७२
स्वीडन	× ×	५४.५३	५६.९८
हालैंड	१९००–१९०९	५१.००	५३.४०
अमेरिका	१९०१–१९१०	४९.३२	५२.५४
इंगलैंड	× ×	४८.५३	५२.३८
स्विट्ज़रलैंड	× ×	४९.२५	५२.१५
फ्रांस	१८९८–१९०३	४५.७४	४९.१३
जर्मनी	१९०१–१९१०	४४.८२	४८.३३
इटली	× ×	४४.२४	४४.८३
जापान	१८९८–१९०३	४३.९७	४४.८५
भारत	१९०१–१९१०	२२.५९	२३.३१
भारत	१९२१–१९३१	२०.९१	२६.५६

पहले लोगों का समय अपनी कर्तव्य साधना करते हुए विभिन्न प्रकार के आमोद-प्रमोद में व्यतीत होता था। आज वर्ष पर्यन्त महामारी, दुर्भिक्ष और रोगों की गणना में ही व्यतीत होता है। पहले लोगों की आयु का अधिकांश पुण्यार्थ व्यतीत होता था, किन्तु आज इसके बिलकुल विपरीत होता है।

कारण ?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि. इसका मुख्य कारण भारत क दरिद्रता ही है। जहाँ लोगों को अपने पेट की चिन्ता से ही छुट्टी न मिले, वहाँ यह कैसे सम्भव है कि वे स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों की ओर समुचित ध्यान दें। परन्तु भारत में एक ऐसा विशाल समुदाय भी है, जो सर्व-साधन- सम्पन्न होते हुए भी, स्वास्थ्य से कोसों दूर रहता है। इसका मुख्य कारण है, उनका इस विषय सम्बन्धी अज्ञान। अपने इस अज्ञान के कारण ही सर्व साधन-सम्पन्न होते हुए भी, यह समुदाय सदैव शारीरिक निर्बलता का शिकार बना रहता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो बलात् उन्हें जीवन दे दिया गया है और येन-केन-प्रकारेण वे उसे शीघ्र-से-शीघ्र काट देना चाहते हैं।

इसलिए भारत के इन अभागे प्राणियों को आज सब से अधिक स्वास्थ्य सम्बन्धी साधारण नियमों के ज्ञान की आवश्यकता है।

आज अँगरेजी एवं अन्य उन्नत भाषाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों पर अनेक उत्तम पुस्तकें विद्यमान हैं, जिन्हें पढ़कर सभी अपने स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान को परिपूर्ण कर सकते हैं और इस भाँति अकाल ही काल के मुख में जाने से अपने को बचाकर 'वेद' के उच्च आदर्श शतं जीवे म शरदः' को चरितार्थ करते हैं।

स्वास्थ्य के साधारण नियमों में भोजन अपना मुख्य और प्रथम स्थान रखता है। इन नियमों के मूल आज भी बोलचाल

में मुहावरों के रूप में सुनने को मिल जाते हैं। परन्तु आज सर्वाधिक आवश्यकता है, साधारण जनता को भोजन सम्बन्धी नियमों का विशद ज्ञान प्राप्त कराने की।

इसी भावना से प्रेरित हो लेखक 'अहार-शास्त्र' के साधारण नियमों को राष्ट्र भाषा में प्रस्तुत करने का दुस्साहस कर रहा है। यह उसी दुस्साहस के परिणाम-स्वरूप पार की हुई प्रथम सीढ़ी है।

प्रस्तुत पुस्तक लिखते समय यह ध्यान रखा गया है कि अगरेजी से अनभिज्ञ पाठक भी इस विषय का अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें। विषय की विस्तृत विवेचना की गई है। इसलिए यह आयुर्वेदिक विद्यालयों में चिकित्सा-शास्त्र के विद्यार्थियों, वैद्यों और हकीमों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी

इस के लिखने का उद्देश्य यह भी है कि हम आयुर्वेद के विद्यार्थियों, वैद्यों एवं अन्य जिज्ञासुजनों को यह बतायें कि आधुनिक विज्ञान ने इन विषयों में कितनी उन्नति की है, और इस ज्ञान को व्यवहार में लाने से साधारण मनुष्यों के स्वास्थ्य में कितना हेरफेर हो सकता है।

निस्सन्देह हमारे संस्कृत-साहित्य में आहार-विज्ञान सम्बन्धी विषयों पर बहुत अधिक साहित्य विद्यमान है। मेरी इच्छा दोनों को तुलनात्मक दृष्टि से लिखने की था। परन्तु समय और संस्कृत के ज्ञान के अभाव के कारण असमर्थ रहा। इसलिए यह मैं पाठकों के ऊपर ही छोड़ता हूँ कि वे दोनों की तुलना करें और जो उत्तम हो, उसे ग्रहण करें।

भाषा और शैली में बहुत-सी त्रुटियाँ होंगी। इसका कारण यह है:—

खेद का विषय है कि हिन्दी में अभी तक इस विषय की पुस्तकों का प्रायः अभाव है और वैज्ञानिक भावों को प्रकट करने

के लिए उपयुक्त शब्द भी अभी हिन्दी में उपलब्ध नहीं । इस-लिए अँग्रेजीभाषा के समान अर्थ बनाने में गलतियाँ हो सकती हैं।

विशेष स्थलों पर टिप्पणियाँ और उदाहरण देकर इस दुरूह विषय को सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। वैज्ञानिक तथ्यों के अलावा विषय के विकास की संक्षिप्त ऐतिहासिक विवेचना देक विषय को जहाँ तक सम्भव हो सका है सरस बनाने का प्रयत्न भी किया गया है।

यदि पाठकों ने विशेषतया घर की देवियों एवं अन्य जिज्ञासु जनों ने इससे थोड़ा-सा भी लाभ उठाया और उनमें अपने स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों की जानकारी प्राप्त करने की सुरुचि उत्पन्न हुई, तो लेखक अपना परिश्रम सफल समझेगा।

इस पुस्तक के लिखने में मैंन जिन लेखकों एवं प्रकाशकों की पुस्तकों से सहायता ली है, वे सब धन्यवाद के पात्र हैं। अपने उन सब मित्रों का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ—जो समय समी पर मुझे प्रोत्साहन देते रहे हैं। विशेन श्री राजेन्द्र, प० शुकदेव शर्मा (सम्पादक स्वतंत्र), डा० भानुशंकर मेहता के नाम उल्लेख नीय हैं। पूज्य गुरुवर डा० बीरभान भाटिया और डा० शिवशरण जी मिश्रा डा० हरगोविन्द दयाल माथुर और प्रो० श्यामनरायण माथुर की विशेष कृपा के फलस्वरूप ही यह पुस्तक आज अपने इस रूप में आ सकी है उनका भी मैं अनुग्रहीत हूँ। माननीया पं० विजयलक्ष्मी (भूतपूर्व मंत्राणी स्वास्थ विभाग) की कृपा के लिये मैं उनका अति कृतज्ञ हूँ।

विटामिन की खोज

हमारे जीवन के लिए भोजन नितांत आवश्यक है, यह सभी जानते हैं। परन्तु साथ ही यह जानना भी अत्यन्त आवश्यक है कि भोजन शब्द से किसी ऐसे पदार्थ का ही बोध नहीं होता, जिसके सेवन से केवल क्षुधा-निवारण हो जाय। यह शब्द अत्यन्त व्यापक है।

भोजन हमारे शरीर में निम्न कार्यों के लिए आवश्यक हैं:—

(१) शरीर के क्षत-विक्षत कार्यों की पूर्ति एवं उनकी वृद्धि के लिए।

(२) हमारे शरीर में शक्ति उत्पादन के लिए।

(३) उपर्युक्त दोनों कार्यों, शरीर वृद्धि एवं अन्य अनेक कार्यों के ठीक-ठीक समन्वय तथा सम्पादन के लिए।

इस प्रकार भोजन वह पदार्थ है, जो आँतों में पचने के बाद शरीर में पहुंचकर उपर्युक्त कार्यों में से किसी एक अथवा अधिक कार्यों का सम्पादन करे साथ ही किसी हानिकर प्रभाव से रहित भी हो।

भोजन के उपर्युक्त कार्यों को ध्यान में रखते हुए हम उसे निम्न श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं:—

(१) वृद्धिकारक—प्रोटीन।

(२) शक्तिवर्धक—वसा अथवा स्नेहन (चर्बीयुक्त) पदार्थ कर्बोज।

(३) अन्य आवश्यक पदार्थ :—

(अ) विटामिन

(ब) खनिज पदार्थ एवं जल

इस भाँति 'विटामिन' भी हमारे भोजन के मुख्य अंग हैं। ये पदार्थ हमारे शरीर की पूर्ण बृद्धि, एवं उसके कार्यों के ठीक सम्पादन के लिए नितांत आवश्यक हैं। कुछ वैज्ञानिकों का कहना तो यहाँ तक है, और ठीक भी है, कि आज कल साधारणतया हीन वास्थ्य एवं अपूर्ण बृद्धि तथा अधिकांश भीषण रोगों का कारण इन आवश्यक पदार्थों का उपयुक्त मात्रा में भोजन में न होना ही है।

उपर्युक्त कथन निर्विवाद रूप से सिद्ध किया जा चुका है, जैसा कि आगे चल कर आधुनिक खोजों एवं प्रयोगों के वर्णन से पाठकों को विदित होगा। अब तो साधारण जनता भी इनकी कमी से उत्पन्न हुई विभीषकाओं, जैसे बेरी-बेरी, स्कर्वी, अस्थि-विकृत नपुँसकता एवं बन्ध्यापन आदि से अपरिचित नहीं रही।

अबसे कुछ पूर्व, जब लोग आधुनिक सत्यों और खोजों से परिचित न थे और उन दिनों समुद्री यात्रा के आज-जैसे साधन न थे, तब मल्लाहों को महीनों बासी रखे हुए विटामिन रहित-भोजन पर ही आश्रित रहना पड़ता था। उन दिनों जहाजों के सारे के सारे यात्री बहुधा इन भीषण रोगों के शिकार हो जाया करते थे।

नामकरण

इस आवश्यक खाद्य-तत्त्व का प्रथम नामकरण सन् १९१३ में फंक (Funk) नामक वैज्ञानिक ने किया था। उसने उनके रासायनिक संगठन के अध्ययन का प्रयत्न कर यह कहा था कि ये पदार्थ जहाँ तक इनके रासायनिक उपादन का सम्बन्ध है—एमाइन (Amine) नामक विशेष रासायनिक समूह के हैं। और ये चूँकि हमारे जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक (Vital) थे, इसलिए उसने इन्हें विटामाइन (Vitamine) नाम दिया।

परन्तु बाद के वैज्ञानिक अनुसंधानों से, जिनसे इनके रसायनिक उपादानों का निर्णय करने एवं सम्पूर्ण विशुद्धावस्था में इनके पृथक्करण का प्रयत्न किया गया, यह सिद्ध हुआ कि ये पदाथ एमाइन (Amine) समूह के नहीं हैं। इसलिए बाद में विटामाइन (Vitamine) शब्द के अन्त का अक्षर हटाकर इनका नाम विटामिन (Vitamin) कर दिया गया।

बाद में जैसे जैसे इस दिशा में ज्ञान बढ़ता गया, इन आवश्यक खाद्य-तत्वों की संख्या भी बढ़ती गई। इसीलिए इनका नामकरण विटामिन A,B,C,D आदि किया गया। ये नाम केवल सुविधा के ध्यान से ही दिये गए हैं, अन्यथा जहाँ तक रसायनिक उपादानों का सम्बन्ध है ये सब पदार्थ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। यदि पहला अल्कोहल वर्ग का है तो दूसरा कर्बोज है। शरीर के कार्यों में भी ये एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। यदि कोई शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक है और उसे संक्रामक रोगों से बचने की शक्ति प्रदान करता है तो दूसरा शरीर के

(स्कर्वी—विटामिन 'सी' की हीनता से उत्पन्न हुआ एक रोग है और बेरी बेरी—विटामिन 'बी' की हीनता से उत्पन्न हुआ रोग)।

ओषजनीकरण क्रियाओं से सम्बन्धित है और तीसरा सन्तानोत्पत्ति के लिए आवश्यक है। इस भाँति ये सब पदार्थ अपने रसायनिक संगटन, आवश्यक कार्यों एवं उद्गम पदार्थों में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। तो भी केवल सुविधा के ध्यान से ये सब 'विटामिन' नाम के ही अन्तर्गत गिने जाते हैं। हाँ, केवल निम्न दृष्टि से वे एक दूसरे से मिलते हैं:—

ये सब पदार्थ हमारे शरीर, उसके कार्यों एवं जीवन के लिए अत्यावश्यक हैं। इनकी कमी से हमारे शरीर के कार्यों में व्याघात होता है। ये सब पदार्थ अस्थायी हैं, इनके लिए भोजन में ताजे पदार्थों का होना नितांत आवश्यक है।

हिन्दी-जगत ने भी इनके नामकरण का प्रयत्न किया है। कुछ ने इन्हें 'खाद्य प्राण' नाम दिया है और कुछ इन्हें 'जीवनीय तत्व' कहते हैं। परन्तु हम अपनी और पाठकों की सुविधा के ध्यान से अपने परिचित 'विटामिन' नाम का ही प्रयोग करेंगे।

संक्षिप्त इतिहास

इस विषय में हमारे ज्ञान का आरम्भ आधुनिक सभ्यता के विकास के साथ-साथ ही हुआ है। मनुष्य ने जब अपने निवासस्थान छोड़, एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के प्रयत्न में नाविक कला का आविष्कार किया, समुद्र पर लम्बी-लम्बी यात्राएँ प्रारम्भ कीं और अपने प्राकृतिक भोजन, कन्द-मूल, फल आदि छोड़ भाँति-भाँति से बनाये हुए भोजनों का व्यवहार प्रारम्भ किया, तभी उसने सब से पहली बार अनुभव किया कि स्वास्थ्य और जीवन के लिए ताजे फल एवं अन्य वानस्पतिक खाद्यों का हमारे दैनिक भोजन के अन्तर्गत उपयुक्त परिमाण में होना नितान्त आवश्यक है।

नाविक कला का प्रारम्भिक इतिहास तो यथार्थ में इन आव-

श्यक खाद्यपदार्थों की हीनता से उत्पन्न हुए रोगों (जैसे स्कर्वी एवं बेरीबेरी) के विरुद्ध युद्ध का इतिहास है।

सर्वप्रथम अठारहवीं शताब्दि के प्रारम्भ में लोगों ने यह पहचाना कि नीबू, संतरे एवं इसी जाति के अन्य फलों में स्कर्वी—अवरोधक एवं स्कर्वी—नाशक शक्ति विद्यमान है। सन् १७५३ ई० में लिंड (Lind) नामक वैज्ञानिक ने अपनी पुस्तक में स्कर्वी के रोकने एवं उसके उपचार के लिए नीबू के रस के प्रयोग का वर्णन किया है। उसने यह भी दिखाया है कि सुखाए गए और रखे हुए फलादि इसके लिए व्यर्थ हैं। इस खोज के लगभग ४० वर्ष बाद ब्रिटिश एडमिरेलिटी (British Admira-lity) ने सन् १७९५ में ब्रिटिश जहाजी बेड़े में नाविकों के दैनिक भोजन में नीबू का रस नियमित रूप से सम्मिलित कर दिया। परिणामतः बहुत शीघ्र ही रोगियों की संख्या में ७५ प्रतिशत की कमी हो गई और लगभग दो वर्ष में स्कर्वी रोग नाविकों में से बिलकुल जाता रहा।

इसी भाँति पूर्वीय देशों में चावल खानेवाली जातियों में जब से मशीन से साफ किए गए चावल का व्यवहार प्रारम्भ हुआ—उन्हें एक नए रोग का सामना करना पड़ा। १९वीं शताब्दि के उत्तरार्ध में चावल खाने वाली पूर्वीय जातियों में 'बेरीबेरी' नामक रोग बड़ी शीघ्रता तथा भयंकरता से फैला। सन् १८७८ और सन् १८८२ ई० के बीच जापानी नाविक बेड़े के लगभग ५० प्रतिशत नाविक इस रोग से पीड़ित थे। सन् ८५ ई० में तकाकाई (Takaki) नामक वैज्ञानिक ने बतलाया कि यह रोग भोजन में किसी आवश्यक खाद्य तत्व की हीनता से उत्पन्न होता है। भोजन में आवश्यक सुधार करते ही यह रोग जापानी नाविकों में बड़ी शीघ्रता से विनष्ट हो गया।

इस रोग के इस भाँति सहसा फैलने का कारण इन जातियों

का मशीन-द्वारा साफ किए चावल के व्यवहार का प्रारंभ था। मशीन-द्वारा साफ़ किये गये चावल का ऊपरी कोट निकल जाता है जिस के साथ उसमें निहित बेरीबेरी अवरोधक तत्व भी ग़ायब हो जाता है।

इस भाँति १९ वीं शताब्दि के अन्त तक हमें विटामिन-हीनता से उत्पन्न हुए दो रोगों का विस्तृत ज्ञान प्राप्त हुआ।

वास्तव में विटामिन के विषय में विस्तृत ज्ञान के इतिहास का आरम्भ सन् १९१२ से होता है जब कि हॉपकिन्स (Hopkins) ने अपने क्रियात्मक प्रयोगों के परिणाम और अपनी खोजों को प्रकाशित किया और फ़ँक ने प्रथम बार इन तत्वों के रसायनिक उपादान जानने का प्रयत्न करते हुए इनका नामकरण (Vitamine) किया। तत्पश्चात् ओसबोर्न एवं मेन्डल (Osborne & Mendel) ने अपनी खोजें प्रकाशित कीं।
हॉपकिंस (Hpkins) ने क्रियात्मक रूप में अपने प्रयोगों-द्वारा इन जीवनीय तत्वों की उपस्थिति सिद्ध की।

उसने आठ-आठ चूहों के दो पृथक् समूहों पर अपना प्रयोग प्रारम्भ किया। परिणाम चित्र के अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा।

उसने चूहों के एक दल (अ) को विटामिन-रहित भोजन पर रखा, और दूसरे दल (ब) को उसी भोजन के साथ थोड़ा-सा दूध और दिया यह क्रम प्रथम १८ दिन तक जारी रहा। दोनों समूहों के चूहों के औसत भार की वृद्धि में अन्तर स्पष्ट है।

दल (अ) के चूहों के भार में कोई बढ़ती नहीं हुई—दूसरी ओर दल (ब) के औसत भार में लगातार और नियमित वृद्धि हुई।

१८ वें दिन के बाद उसने क्रम बदलकर दल (ब) को तो
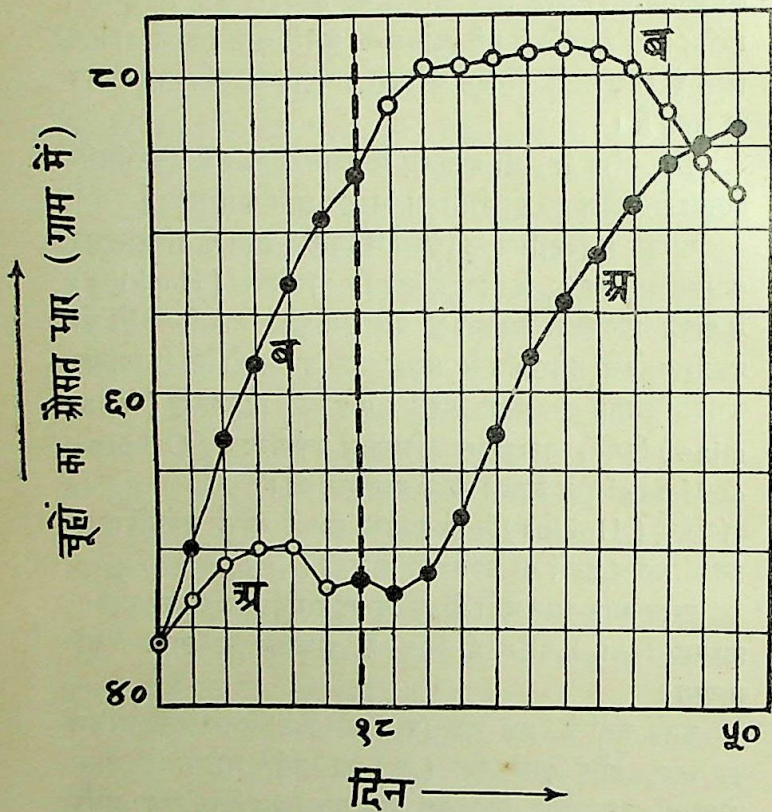
[हापकिन्स के प्रयोग के आधार पर]

(चित्र सं०-१)

विटामिन रहित भोजन देना प्रारम्भ किया और दल (अ) के भोजन में दूध और बढ़ा दिया। दल (ब) की वृद्धि शीघ्र ही रुक गई और अब दल (अ) के चूहों का औसत भार नियमित रूप से बढ़ने लगा।

इस भाँति हापकिंस ने अपने इस प्रारम्भिक प्रयोग से निर्विवादतः यह सिद्ध कर दिया कि दूध में कोई ऐसा तत्त्व अवश्य विद्यमान है, जो शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक है।

इन प्रारम्भिक अनुसन्धानों ने वैज्ञानिकों के हृदय में उत्साह भर दिया, जिसके परिणाम स्वरूप सन् १९१८ तक हमें तीन विभिन्न विटामिनों का ज्ञान प्राप्त हो गया और तब से अब तक लगातार इनकी संख्या धीरे-धीरे बढ़ती ही जा रही है। और अब तो हमने इनके रासायनिक संगटन एवं विशुद्धावस्था में इनके पृथक्करण-क्रिया के विषय में भी सन्तोष-जनक उन्नति कर ली है।

इस भाँति विटामिन का इतिहास तीन विभिन्न कालों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) सन् १९१२ से पहले विटामिन-हीनता से उत्पन्न हुए कुछ दोषों का ज्ञान।

(२) सन् १९१२ से सन् १९२५ तक जानवरों पर किऐ गऐ प्रयोगों-द्वारा विभिन्न विटामिनों की हीनता से उत्पन्न हुए प्रभावों का विश्लेषण।

(३) सन् १९२५ के उपरान्त विटामिनों के रासायनिक उपादान का अध्ययन, उनका पृथक्करण एवं रासायनिक संगटन।

विटामिन और हमारा शरीर

विटामिनों की आवश्यकता

मनुष्य में विटामिन की आवश्यकता उसकी शारीरिक अवस्था, लिंग-भेद, आयु एवं उसके देश और जलवायु पर निर्भर करती है। प्रारम्भ में हमने विटामिन की आवश्यकता का अनुमान जानवरों में उनकी पूर्ण हीनता उत्पन्न कर जानने की कोशिश की थी। इस भाँति हमने विटामिन की कम-से-कम दैनिक आवश्यकता का अनुमान किया, जो हमारे लिए नितांत आवश्यक है और जिसमें कमी होने से हम हीनता-जन्य रोगों से ग्रस्त हो जाएँगे। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि ये कम-से-कम (minimum) दैनिक मात्रा हमारे पूर्ण स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त (optimum) नहीं है। आज हमारा उद्देश्य ऐसे आहारों की खोज नहीं है, जिनसे हम येन-केन-प्रकारेण अपना जीवन निभा सकें, बरन् हम चाहते हैं कि ऐसे आहार की खोज हो, जिनसे हम पूर्ण स्वास्थ्य के साथ अपने शरीर के तमाम कार्यों एवं जीवन को भी ठीक रख सकें।

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी दैनिक विटामिन-आवश्यकता अलग है, जो उसकी आयु, शारीरिक अवस्था, लिंग भेद एवं देश और काल पर निर्भर करती है। फिर भी हम प्रत्येक विटामिन की दैनिक आवश्यकता की औसत का अनुमान देने का प्रयत्न करेंगे।

विटामिन-हीनता

आजकल पूर्ण विटामिन-हीनता बहुत कम देखने में आती है। परन्तु दूसरी ओर यह भी निश्चित है कि आजकल साधारण जनता में आधुनिक अनेक बीमारियाँ अंशतः विटामिन-हीनता की ही देन हैं।

पूर्ण विटामिन-हीनता से उत्पन्न हुए रोगों को पहचानना बहुत आसान है। परन्तु आंशिक विटामिन-हीनता से उत्पन्न दोषों का पहचानना और उनका निदान कठिनतर कार्य है।

विटामिन-हीनता के कारण

विटामिनहीनता निम्न कारणों द्वारा हो सकती है।

(१) भोज्य पदार्थों में विटामिन की कमी।

(२) विटामिनों के आत्मीकरण में व्याघात।

(३) अत्यधिक आवश्यकता।

भोज्य पदार्थों में विटामिनों की कमी से उत्पन्न हुई विटामिन-हीनता अधिकतर देखने में आती है। वे रोग जिनमें आत्मीकरण-क्रिया शिथिल हो जाती है, विटामिन-हीनता के दूसरे कारण हैं।

जहाँ वसा के आत्मीकरण में व्याघात पहुँचता है वहाँ उसमें घुलनेवाले विटामिनों का आत्मीकरण भी कम हो जाता है। उदाहरण के लिए वसा के पूर्ण आत्मीकरण के लिए विक्षुद्रा में पित्त की उपस्थिति आवश्यक है। यदि किसी भाँति पित्त स्रोत-नालिका में रुकावट होने के कारण, पित्त क्षुद्रांत्र में न आने पाए तो परिणामतः वसा के पूर्ण आत्मीकरण में व्याघात होगा। साथ-ही-साथ वसा में घुलनवाले विटामिन 'के' की हीनता भी उत्पन्न हो जाएगी।

एल्कोहल का अधिक प्रयोग करनेवालों में आमाशय की

श्लैष्मिक कला के कार्य में व्याघात होता है। परिणामतः विटामिन बी १ का पूर्ण आत्मीकरण नहीं हो पाता और वह व्यक्ति विटामिन-हीनता के दोषों से पीड़ित हो जाता है।

हमारे शरीर में विटामिनों की पर्याप्त मात्रा पहुँचना निम्न बातों पर निर्भर है:—

(१) विटामिन का आत्मीकरण।

(२) व्यक्तिगत आवश्यकता।

व्यक्तिगत आवश्यकता निम्न दशाओं में बहुत बढ़ जाती है।

(अ) बालक और बच्चों में।

(ब) गर्भवती स्त्रियों में।

(स) रोगी अवस्था में।

बच्चों को दूध पिलानेवालों माताओं में विटामिन की वह मात्रा, जो साधारण दशा में एक युवा पुरुष के लिए पर्याप्त है, काफी नहीं है। विटामिन-हीनता से उत्पन्न हुए दोष पुरुषों की अपेक्षा बालकों, गर्भवती स्त्रियों और माताओं में अधिक शीघ्र एवं अधिक परिमाण में प्रकट होते हैं। इसलिए किसी जाति के भोज्य पदार्थों में विटामिन की मात्रा स्थिर करते समय बालकों और माताओं का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है।

उद्गम

ये खाद्य-तत्त्व (विटामिन) वनस्पति जगत्-द्वारा तैयार किए जाते हैं। वनस्पति-जगत् से ये जन्तु-जगत् में पहुँचते हैं। कुछ विटिामिन जानवरों के शरीर के कुछ विशेष तन्तुओं में अधिक मात्रा में एकत्र होने की क्षमता रखते हैं। उदाहरणतः विटामिन 'ए' और 'डी' मछलियों के यकृत में बहुत अधिक मात्रा में एकत्र होते हैं और इसलिए उनके यकृत से निकाला गया तेल इन विटामिनों में विशेषतः धनी होता है। मछलियों में ये विटामिन

आते वनस्पति-जगत् से ही हैं। इसी भाँति गाय के दूध में विटामिनों की मात्रा उसके चारे में उपस्थित विटामिनों की मात्रा पर निर्भर करती है। भूसे पर आश्रित गायों के दूध में विटामिन नाम मात्र को ही होते हैं और दूसरी ओर हरे चारे पर आश्रित गायों का दूध विटामिनों की मात्रा में अधिक धनी होता है।

कुछ विटामिन हमारे एवं अन्य प्राणियों के कुछ विशेष तन्तुओं में स्वतः निर्मित होने की क्षमता रखते हैं। उदाहरण के लिए विटामिन 'डी' और 'सी' हैं। इनका विस्तृत वर्णन आगे चलकर इनके विशेष स्थलों पर किया जाएगा।

यूनिट

प्रत्येक वस्तु की पारिमाणिक व्याख्या के लिए किसी माप की आवश्यकता होती है। और उस माप का आधार इकाई होता है। अलग-अलग वस्तुओं की पारिमाणिक व्याख्याओं के लिए भिन्न-भिन्न इकाइयों का प्रयोग होता है। उदाहरणत. छटाँक. ग्राम आदि भार के लिए; वर्ग इञ्च, वर्ग सेंटी-मीटर आदि क्षेत्र-फल के लिए; घन-इञ्च आदि आयतन के लिए; पेनी, पैसा आदि धन के लिए। इसी भाँति हमें विटामिनों की व्याख्या के लिये भी आवश्यक मापों की आधारभूत इकाइयों की आवश्यकता है। अलग-अलग विटामिनों के लिए भिन्न-भिन्न यूनिट स्थिर की गई हैं, जो विशेष स्थलों पर अधिक विस्तार पूर्वक दी जाएँगी। ये यूनिट समस्त वैज्ञानिक जगत् में एक ही रूप से व्यवहृत होती हैं। इसलिए इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय इकाई कहते हैं। पर हम यहाँ सुविधा के लिए शब्द यूनिट का ही प्रयोग करेंगे आगे कहीं भी 'यूनिट' शब्द से हमारा अर्थ उस विटामिन की अन्तर्राष्ट्रीय यूनिट से ही है।

सूची

अब तक ज्ञात मुख्य विटामिन निम्न-लिखित हैं:—

(अ) वसा में 'घुलनशील'।

१ विटामिन 'ए' — { विटामिन 'ए' १, विटामिन 'ए' २ }

२ विटामिन 'डी' — { विटामिन 'डी' १, ,, 'डी' २, ,, 'डी' ३, ,, 'डी' ४ }

३ विटामिन 'ई'

५ विटामिन 'एफ'

४ विटामिन 'के'

(ब) जल में घुलनशील

१ — { विटामिन 'सी', विटामिन 'पी' }

२ विटामिन 'बी' —
१ विटामिन 'बी' १
२ विटामिन 'बी' २ { राइबोफ्लेविन, निकोटिनिक ऐसिड }
३ विटामिन 'बी' ३
,, 'बी' ४
५ ,, 'बी' ५
६ ,, 'बी' ६
७ फोलिक ऐसिड

३ विटामिन 'एच'

अब हम इनमें से प्रत्येक विटामिन को अलग· अलग अधिक विस्तार के साथ लिखेंगे।
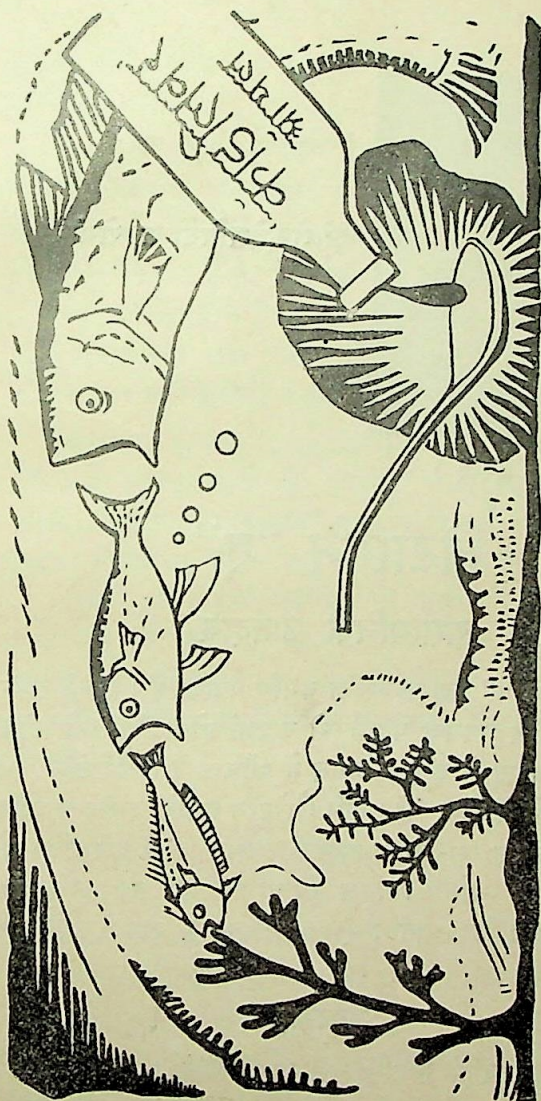
(विटामिन 'ए' और 'डी' का उद्गम)

चित्र संख्या-२

[एम. आर. मसानी की your food नामक पुस्तक से]
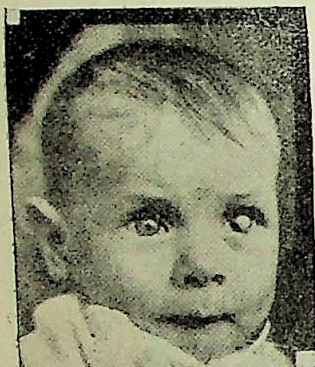
ज़ीरोफ्थेलमिया का रोगी

(चित्र सं०-३)

विटामिन "ए"

रासायनिक उपादान

विटामिन 'ए' एक एल्कोहल वर्गीय पदार्थ है। हमारे शरीर में यह कैरोटीन नामक पदार्थ से उत्पन्न होता है। 'कैरोटीन' वनस्पति—जगत से जन्तु—जगत में पहुँचता है। 'कैरोटीन' हरी शाक-भाजियों में होता है। यही कैरोटीन हमारे शरीर में पहुँच कर यकृत में एक रस-विशेष द्वारा विटामिन 'ए' में परिवर्तित हो जाता है। इस भाँति निर्मित विटामिन 'ए' का अधिकांश यकृत में जमा हो जाता है (९० प्रतिशत), शेष फेफड़ों और गुर्दों में।

उद्गम

विटामिन 'ए' के रूप में यह मछलियों के यकृत से निकाले गए तेलों में बहुतायत से होता है। हैलिबट लिवर आयल इसका

सब से धनी उद्गम हैं। कॉडलिवर आयल भी विटामिन 'ए' में विषेषतया धनी है।

पशु-शरीर के कुछ विशेष तन्तुओं में भी विटामिन 'ए' की अधिकता होती है। जैसे वृक्क, यकृत, प्लीहा (तिल्ली) आदि में। यह विटामिन दूध और अंडे की जर्दी में भी उपयुक्त मात्रा में होता है। मक्खन में भी विटामिन 'ए' काफ़ी मात्रा में होता है। मूँगफली और ताड़ के तेलों को छोड़कर यह अन्य किसी वनस्पति तेल में नहीं पाया जाता। कुछ अंशों में यह काजू, अखरोट और बादाम सरीखे मेवों में भी होता है।

'कैरोटीन' के रूप में यह विटामिन हरी शाक-भाजियों एवं ताजे फलों में बहुत होता है। पालक, करमकल्ला, गाजर और सलाद आदि में ये बहुत काफ़ी मात्रा में होता है। फलों में सन्तरे, टमाटर विटामिन 'ए' के लिए सब से उपयुक्त हैं।

गाय के दूध में इस विटामिन की मात्रा हरे चारे पर निर्भर करती है। सूखे भूसे पर आश्रित रहने वाली गायों के दूध में विटामन 'ए' नहीं होता। इसीलिए बच्चों को दूध पिलाने वाली माताओं के भोजन में भी हरी-शाक-भाजी की अधिकता होनी चाहिये।

स्थायित्व

किसी वस्तु को देर तक लगातार पकाने से उसका विटामिन 'ए' नष्ट हो जाता है। यह बात घर में भोजन बनाने वाली स्त्रियों को सदैव ध्यान में रखनी चाहिए। ठंड का इस पर कोई प्रभाव नहीं होता। इसलिए अच्छे दूध से बनी आइसक्रीम (बर्फ) में विटामिन 'ए' मौजूद रहता है।

यूनिट

विटामिन 'ए' की १ यूनिट ॰६ म्यूग्राम बीटा कैरीटीन में निहित शक्ति के बराबर होती है।

दैनिक आवश्यकता

एक स्वस्थ मनुष्य की औसत दैनिक आवश्यकता लगभग ५००० यूनिट है जो निम्न पदार्थों में से किसी एक से भी नीचे दिए गए परिमाण में प्रयोग करने से प्राप्त की जा सकती है :—

५००० यूनिट

३ मिलीग्राम 'बी' कैरोटीन

१ बूंद हैलिबट लिवर ऑयल

१ छोटी चम्मच कॉड लिवर आयल

लगभग १ छटाँक पालक

,, ५ छटाँक मक्खन

,, १ पाव टमाटर अथवा गाजर

*,, २ पाइएट दूध

बालकों एवं गर्भवती स्त्रियों को औसतन अधिक विटामिन 'ए' की आवश्यकता होती है। जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है :—

[१ ग्राम=१० डेसी ग्राम=१००० मिलीग्राम ' १ मिलीग्राम =१००० माइक्रो मिलीग्राम अथवा १००० म्यूgm। १ म्यूgm. =१/१००० मिलीग्राम=१/१०००,००० ग्राम। समस्त वैज्ञानिक जगत् में यही यूनिट प्रयोग होती हैं। इसीलिए यहाँ भी यही अन्तर्राष्ट्रीय यूनिट दी गई है। १ ग्रामलगभग १ माशा या ७॥ रत्ती के बराबर होती है।]

* १ पाइएट लगभग ढाई पाव

विटामिन 'ए' की दैनिक आवश्यकता

आयु	यूनिट प्रतिदिन
१ वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए	२०००-२५००
१ से २ वर्ष तक	२५००-४०००
२ से १८ वर्ष तक	४०००-८०००
युवा पुरुष	४०००-५०००
गर्भवती स्त्री और माता	५०००-६०००
औसतन (प्रत्येक आयु के लिए)	५०००
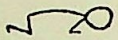
विटामिन 'ए' के कार्य एवं उसकी हीनता से उत्पन्न दोष

विटामिन 'ए' हमारे शरीर की ठीक वृद्धि के लिए अत्यावश्यक है। विटामिन 'ए' की हीनता से शरीर की वृद्धि रुक जाती है और हमारे शरीर के पूर्ण विकास में व्याघात होता है।

उपर्युक्त कथन को Hopkins ने अपने प्रारम्भिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिखाया है, जिसका सविस्तार वर्णन पीछे किया जा चुका है।

इस कथन की सत्यता को हम अपने मुहल्लों के बच्चों का निरीक्षण करके भी जाँच सकते हैं। जिन बच्चों के भोजन में विटामिन 'ए' की कमी होगी, उनके शरीर की वृद्धि एवं अंगों का विकास पूर्णरूपेण ठीक-ठीक न होगा। यदि आपके बच्चे के भोजन में विटामिन 'ए' पर्याप्त मात्रा में है, तो उसके शरीर एवं बुद्धि का विकास ठीक रूप से होगा। और वह सफलता के साथ ठीक समय पर अपने प्रारम्भिक जीवन-पथ की सीढ़ियाँ पार करता जायगा (चित्र सं० ४)

४ सप्ताह में
अपने घुटने पेट छाती एवं हाथों पर टिकता है

८ सप्ताह में
सिर उठा कर बाहों पर टिकना

१२ सप्ताह में
पैर फेंकता है

१६ सप्ताह में
सिर और छाती उठाता है
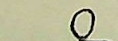
२० सप्ताह में
पेट और छाती पर टिकता है
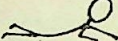
२४ सप्ताह में
जांघ, पेट, छाती और हाथों पर टिकता है

२८ सप्ताह में
बाँह उठाता है

३२ सप्ताह में
उठने के प्रयत्न में
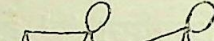
३६ सप्ताह में
जाँघों, पेट और हाथों के बल टिकता है

४० सप्ताह में
उठना चाहता है

४४ सप्ताह में
बैठने लगता है

४८ सप्ताह में
रेंगने लगता है

५२ सप्ताह में
खड़ा होने लगता है।

शिशु के प्रारम्भिक जीवनपथ की कुछ मञ्जिलें।

(चित्र संख्या-४)

[डॉ० मैक्कन की Eating For Health नामक पुस्तक से]

इसलिए हमें शिशुओं को दूध पिलाने वाली माताओं के भोजन में जहाँ तक विटामिन 'ए' का सम्बन्ध है, अधिक उदारता से काम लेना चाहिए।

कृत्रिम भोजन, जैसे बोतलों के दूध आदि पर आश्रित बच्चों के लिए उनके प्रारम्भिक जीवन-पथ की सरल मंजिलें कठिन-तर हो जाएँगी। दूसरी ओर जिन बच्चों के भोजन में हरे शाक, भाजी, फल और दूध इत्यादि पर्याप्त मात्रा में होंगे, उनके शरीर का विकास ठीक होगा, उनके भार में नियमित वृद्धि होगी।

विटामिन 'ए' शरीर की वृद्धि के लिए उत्तरदायी होने के साथ-साथ और भी बहुत से कार्यों के लिए आवश्यक है। हमारे शरीर में श्वास संस्थान एवं अन्न-प्रणाली की श्लैष्मिक कलाओं के स्तम्भाकार कोषों की स्वस्थ अवस्था एवं उनके ठीक कार्यों के लिए भी विटामिन 'ए' की उपयुक्त मात्रा आवश्यक है। त्वचा एवं नेत्रों की कनीनिका (conjunctiva) के कोष भी विटामिन 'ए' के बिना पूर्णतया स्वस्थ नहीं रह सकते।

इस विटामिन की कमी से उपर्युक्त श्लैष्मिक कलाओं के स्तम्भाकार कोष अस्वस्थ होकर पर्तदार हो जाते हैं और उनमें संक्रामक रोगों के कीटाणुओं का सामना करने की क्षमता नहीं रह जाती। शरीर विभिन्न संक्रामक रोगों का शिकार हो सकता है। ऐसे व्यक्ति बहुधा ज़ुकाम खाँसी, निमोनिया एवं क्षय आदि रोगों से पीड़ित रहा करते हैं। इसीलिए कॉडलिवर आयल, जो विटामिन 'ए' में विशेषतया धनी है, इन रोगों में इतना ख्याति-प्राप्त एवं प्रचलित है। विटामिन 'ए' हमें संक्रामक रोगों का सामना करने की शक्ति प्रदान करता है।

विटामिन 'ए' की कमी से हमारी त्वचा भी अस्वस्थ होकर शुष्क एवं खुरदरी सी हो जाती है। नेत्रों में कनीनिका (Conjunctiva) की सुन्दर आभा मन्द हो जाती है। सफ़ेद

धब्बे पड़ जाते हैं (Bitots white spots)। और साथ ही रात्रि-अन्धता या रतौंधी का रोग हो जाता है।

अधिक विटामिन 'ए' हीनता से आँखों की छूत की बीमारियों (Infections) का सामना करने की शक्ति जाती रहती है, और वे Xerophthalmia तथा Keratomalacia सरीखे रोगों का शिकार हो सदैव के लिए ज्योति खो बैठती है। (चित्र ३)

इसी विटामिन की कमी पायरिया रोग के लिए भी उत्तरदायी है। आज कल पथरी रोग का एक कारण विटामिन 'ए' की हीनता भी कहा जाता है।

इस विटामिन की कमी आमाशयिक व्रण का भी कारण है। इसकी कमी से हमारे स्नायविक तन्तु और विशेषतः सुषुम्ना (Spinal Cord) कुछ हानिकर विषमय पदार्थों (Toxins) का शिकार आसानी से हो जाती हैं।

उपर्युक्त सब दोष पूर्ण विटामिन 'ए' की हीनता से उत्पन्न होते हैं और अधिक देखने में नहीं आते। परन्तु दूसरी ओर विटामिन 'ए' की आंशिक हीनता (Minor deficiency) आज-कल वहुत देखने में आती है। इसके सबसे मुख्य लक्षण निम्न हैं :—

रात्रि-अन्धता, अपूर्ण वृद्धि और विकास तथा श्वास संस्थान के रोगों का बारबार आक्रमण।

इस भाँति अब यह विदित है कि विटामिन 'ए' हमारे शिशुओं, बालकों एवं माताओं के स्वास्थ्य के लिए कितना आवश्यक है। हम तो यह कहने में भी नहीं हिचकेंगे कि किसी जाति की उन्नति, उसका उत्थान, उसके खाद्य पदार्थों में निहित विटामिन 'ए' की मात्रा पर निर्भर करता है।

विटामिन "डी"

विटामिन 'डी' भी 'ए' की ही भाँति वसा में घुलनशील विटामिन है। जहाँ तक रासायनिक उपादन का सम्बन्ध है, ये खाद्य तत्त्व स्टीरॉल वर्गीय पदार्थों से मिलता-जुलता है।

उद्गम

यह विटामिन हमारे शरीर में निर्मित होने की क्षमता रखता है। इसके निर्माण के लिए आवश्यक शक्ति के लिए हमें सूर्य-रश्मियों की आवश्यकता होती है। हमारे शरीर में त्वचा के नीचे एक विशेष रासायनिक पदार्थ उपस्थित है, इसे हम ७ डीहाइड्रोक्सी कोलिस्टरोल कहते हैं। यह पदार्थ सूर्य-रश्मियों में निहित शक्ति से, हमारे शरीर में विटामिन 'डी' में परिणत हो जाता है। इसके लिए आवश्यक शक्ति हमें सूर्य-रश्मियों में उपस्थित एक *विशेष प्रकार की किरणों से प्राप्त होती है। धुएँ आदि की उपस्थिति में इन विशेष किरणों का बहुत थोड़ा-सा भाग हम तक पहुँच पाता है। इसलिए बड़े शहरों की अपेक्षा गाँवों, पहाड़ों और समुद्रतट के स्थानों की धूप हमारे शरीर में अधिक विटामिन 'डी' का निर्माण करती है इस भाँति हम अपनी आवश्यकतानुसार विटामिन 'डी' स्वयं अपने शरीर में ही निर्मित कर सकते हैं—यदि सूर्य-रश्मियों का अभाव न हो। सौभाग्यवश सूर्य-रश्मियों के अभाव का प्रश्न भारत सरीखे देश में तो उठता ही नहीं। यही कारण हैं कि भारतीय जन-साधारण सुलभ भोजन में

---

* पराकासनी किरणें (ultra-violet rays)

विटामिन 'डी' की इतनी कमी होते हुये भी इसकी हीनता से उत्पन्न दोष इतनी गम्भीरता से देखने में नही आते। विटामिन 'डी' हीनता जन्य दोष पाश्चात्य एवं उत्तरीय प्रदेशों में (जहाँ कहीं तो महीनों तक सूर्य भगवान् के दर्शन भी दुर्लभ रहते हैं) अपने गम्भीर और भीषण रूप में बहुतायत से देखने में आते हैं—विशेषतया शीत ऋतु में

यह विटामिनसूर्य रश्मियों की उपस्थिति में स्टीरोल वर्गीय एक अन्य पदार्थ Ergosterol से भी बनता है। इस भाँति प्राप्त विटामिन 'डी' को हम विटामिन 'डी २' कहते हैं। विटामिन 'डी १' बनस्पति जगत से प्राप्त विटामिन 'डी' का नाम है। जल जन्तुओं (मछली आदि) से प्राप्त विटामिन को हम विटामिन 'डी ३' कहते हैं। और 'डी ४' भी हमें Ergosterol से प्राप्त होना है।

इन चारों प्रकार के डी विटामिनों में बहुत सूक्ष्म व्यक्तिगत अन्तर है। परन्तु जहाँ तक इनका सम्बन्ध मनुष्य शरीर और उसके कार्यों से है—इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं है।

विटामिन 'डी २' को 'कैलसिफरोल' (Calciferol) भी कहते हैं। यह सब से शक्तिशाली 'डी' विटामिन है।

यूनिट

विटामिन 'डी' की एक यूनिट०-०२५ माइक्रो मिली-ग्राम 'कैलसिफरोल' (में निहित शक्ति) मानी गई है।

दैनिक आवश्यकता

एक युवा पुरुष के पूर्ण स्वास्थ्य के लिये विटामिन 'डी' की औसत दैनिक आवश्यकता लगभग ५००-१००० यूनिट है जो कि
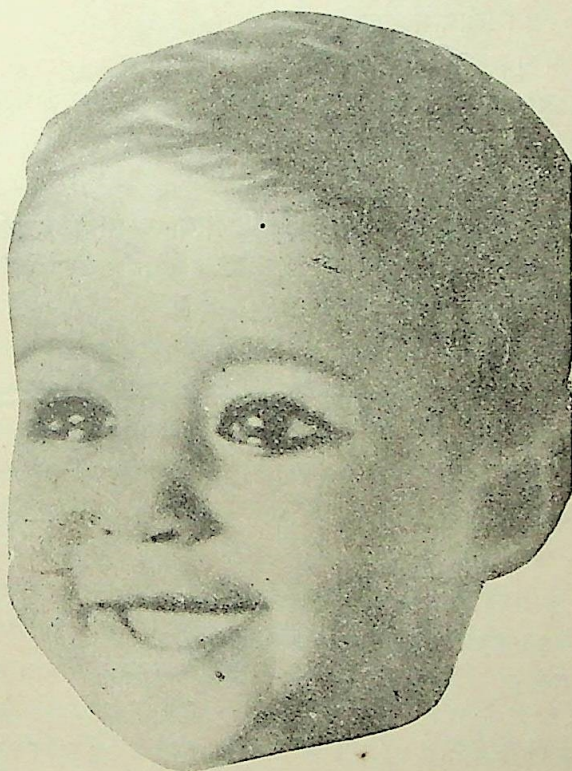
चित्र सं०-५

विटामिन 'डी' उपयुक्त परिमाण में
पाने वाला स्वस्थ बालक

निम्न पदार्थों में से किसी एक से उसके साथ दिए गए परिमाण में प्रयोग करने से प्राप्त हो सकती है—

'०२५ मिलीग्राम कैलसिफरोल
३-६ बूँद हैलबिट लिवर आयल
१ चम्मच काड लिवर आयल
१ पाव मक्खन
५ गैलन दूध

युवा पुरुषों की अपेक्षा बालकों एवं गर्भवती स्त्रियों को अधिक विटामिन 'डी' की आवश्यकता होती है। जैसा कि नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट है—

विटामिन 'डी' की दैनिक आवश्यकता

आयु	यूनिट प्रति दिन
छोटे बच्चों के लिए	१०००—२०००
पूरे ९ मास के होने से पहले ही उत्पन्न हुए और बहुत बढ़ने वाले बच्चों में (प्रथम ४ मास तक)	४५०० तक
युवा पुरुष के लिए	२५०—७०० तक
औसत (प्रत्येक आयु के लिए)	लगभग ७००

विटामिन 'डी' के कार्य एवम् उसकी हीनता से उत्पन्न दोष

विटामिन 'डी' पर ही हमारे शरीर में कैलशियम का सारा कार्य निर्भर है। विटामिन 'डी' की उपस्थिति आँतों की प्रतिक्रिया को क्षारीय होने से रोकती है और इस भाँति कैलशियम के आत्मीकरण में सहायता पहुँचाती है। विटामिन 'डी' की कमी से आँतों की प्रतिक्रिया अधिक क्षारीय हो जाती है, परिणामतः भोजन में उपस्थित कैलशियम का अधिकांश भाग अघुलनशील रूप में परिवर्तित हो विष्ठा के साथ बाहर निकल जाता है। इसलिए इस विटामिन की उपस्थिति कैलशियम के आत्मीकरण के लिए आवश्यक है।

इसके साथ ही साथ इस विटामिन की उपयुक्त मात्रा हमारे रक्त में उपस्थित कैलशियम एवं फासफोरस का अनुपात ठीक रखने के लिए उत्तरदायी है। हमारे शरीर में कैलशियम एवं फासफोरस के समस्त कार्यों के ठीक दशा में होते रहने के लिए इन दोनों का एक निश्चित अनुपात होना आवश्यक है, जिसमें गड़बड़ होने से दोनों के कार्यों में व्याघात होता है।

विटामिन 'डी' हमारी हड्डियों एवं दाँतों के स्वास्थ्य के लिए भी आवश्यक है। इसकी हीनता से हड्डियों में कैलशियम ठीक प्रकार से जमा नहीं होता और उनके विकास एवं वृद्धि में देर होती है।

विटामिन 'डी' की हीनता से बच्चों को अस्थि-विकृति रोग (Rickets) हो जाता है। अधिक आयु में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में विटामिन 'डी' की हीनता के लक्षण अधिक और शीघ्र उत्पन्न होते हैं।

अस्थि-विकृति (Rickets)

यह रोग छोटे बच्चों में विटामिन 'डी' की हीनता से उत्पन्न होता है। साधारण जनता इससे 'सूखा रोग' अथवा 'बाल-शोष' नाम से परिचित है परन्तु अस्थि-विकृति इसके लिए सबसे उपयुक्त नाम है।

यह रोग अधिकतर ६ माह से २ वर्ष तक की आयु के बच्चों को होता है। इसका कारण विटामिन 'डी' की हीनता है। इसलिए यह उन देशों में अधिकता से होता है जहाँ महीनों सूर्य के दर्शन भी नहीं होते। जाड़ों में यह रोग अधिक होता है और गर्मियों में सूर्य की प्रखरता की वृद्धि के साथ-साथ इस रोग के रोगियों की दशा उन्नत होती जाती है एवं उनकी संख्या में बहुत कमी हो जाती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि यह विटामिन हमारे शरीर में सूर्य रश्मियों में उपस्थित अल्ट्रावायलेट किरणों में निहित शक्ति की सहायता से स्वतः निर्मित होता है। इसे ध्यान में रखने से इस रोग का उपर्युक्त कारण सहज ही समझ में आ जायगा।

भारत में भी यह रोग काफी पाया जाता है। यहाँ इसका कारण सूर्य की दुर्बलता नहीं—वरन् हमारा आहार-विज्ञान सम्बन्धी अज्ञान है। हमारे वे बच्चे जिनके भोजन में विटामिन 'डी' बिलकुल नहीं होता (उनके भोजन में विटामिन 'डी' की हीनता के लिए ग़रीबी के साथ साथ हमारा अज्ञान भी उत्तरदायी है) और साथ ही साथ माँ-बाप के अज्ञान जनित लाड़-प्यार के कारण जिनके शरीर पर सदैव चार-चार कपड़े लिपटे रहते हैं और इस भाँति कि कहीं जरा-सी अंगुली अथवा नाक भी खुली न रह जाय, ऐसे (और विशेषकर बड़े-बड़े शहरों के ऊँचे महलों में रहने वाले) बच्चे भी बहुधा इस रोग से ग्रसित हो जाते हैं।
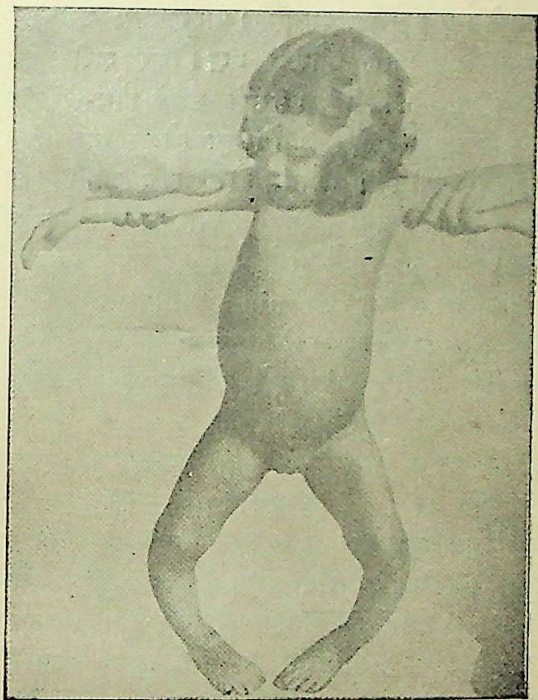
चित्र सं०-६

रिंकेट्स का रोगी (आयु—२ वर्ष)

लक्षण

विटामिन 'डी' की कमी से बच्चे की हड्डियों में कैलशियम के एकत्र होने में व्याघात होता है। परिणामतः उसकी हड्डियों में दृढ़ता नहीं आने पाती और वे नम्र होकर शरीर के भार से लचकर विकृत हो जाती हैं। इससे उसके हाथ- पैरों के जोड़, मस्तक, पीठ या रीढ़ की हड्डियाँ विकृत होकर निकम्मी हो जाती हैं। रीढ़ की लम्बी हड्डी मुलायम होकर लच जाती है जिससे या तो पीठ में कूबड़ निकल आता है और या छाती ऊँची होकर 'कपोत-वक्ष' हो जाता है। हाथों-पैरों की लम्बी हड्डियाँ टेढ़ी हो जाती है। कपालास्थि (Cranium) विकृत होकर कुछ बड़ी, चपटी और लम्बी हो जाती है। अक्षक अथवा हँसली की हड्डी भी विकृत हो जाती है। पसलियों की हड्डियाँ भी विकृत होकर ऊँची-नीची हो जाती हैं।

उपर्युक्त लक्षण रोग के पूर्ण रूप से बढ़ जाने पर प्रकट होते हैं। परन्तु सबसे प्रारम्भ में बालक क्लांत और खिन्न दिखाई देता है और वह चिड़चिड़ा हो जाता है। मस्तक पर पसीना आने लगता है, विशेषकर जब कि बच्चा सोता होता है। बच्चा रात में सोते समय लातों से अपने कपड़े फेंक देता है। प्रारम्भ में बालक दुबला नहीं होता कोई-कोई तो असाधारण रूप से मोटा हो सकता है। भूख अधिक लगती है। ज्यों-ज्यों रोग बढ़ता जाता है और अधिक लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। दाँतों के निकलने में देरी होती है, तत्पश्चात हड्डियोंके सिरे मोटे और विकृत होने लगते हैं बाद में सर्व प्रथम वर्णित लक्षण उत्पन्न होते हैं। इनके साथ-साथ मांस पेशियाँ निर्बल होने लगती हैं और रक्ताल्पता भी हो सकती है।

पाचन-संस्थान में भी बहुधा गड़बड़ उत्पन्न हो जाती है। अतिसार उत्पन्न होकर उन्हें पीले बदबूदार दस्त आने लगते हैं।

रिकेट्स के रोगी के टेढ़े पैर
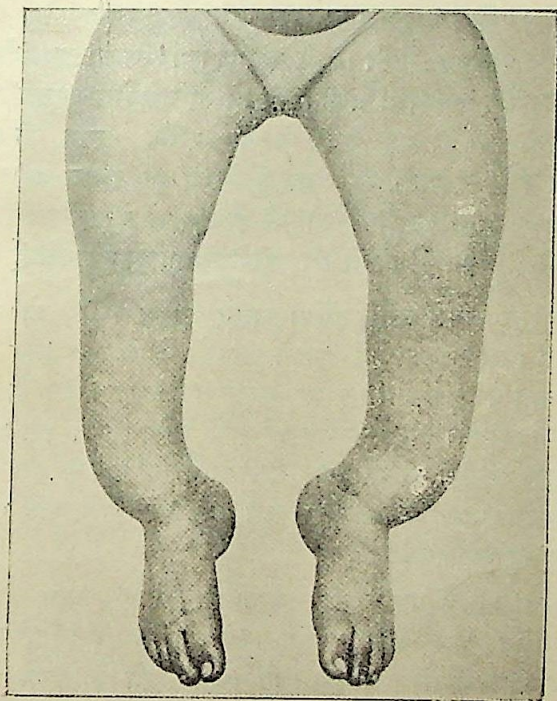
चित्र सं० ७
(आयु २२ माह)

पेट आगे को बढ़ जाता है। यकृत और प्लीहा भी कुछ बढ़े हुए पाए जा सकते हैं।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि यह रोग हमारे बालकों के लिए कितना भयंकर है। इससे उत्पन्न हुए दोष विशेषतया अस्थि-विकार जन्म पर्यन्त वैसे ही रहते हैं।

यदि प्रारम्भ में ही किसी कुशल चिकित्सक द्वारा रोग का निदान और चिकित्सा भलीप्रकार हो तो यह रोग बहुत ही सुख-साध्य है, अन्यथा यह सदैव के लिए रोगी बालक की हड्डियाँ विकृत और निकम्मी कर जाता है। रोग का इलाज बहुत सरल है। मुख्य बात विटामिन 'डी' की हीनता को दूर करना है, जिसे हम पीछे लिखे हुए किसी भी तरीके से प्राप्त कर सकते हैं।

परन्तु सबसे उत्तम तो प्रारम्भ में ही इस रोग को न होने देना है। इसके लिए हमें अपने बालकों के भोजन और उनकी दिनचर्या पर थोड़ा-सा ध्यान रखने की आवश्यकता है, परन्तु दुर्भाग्यवश इस देश के शत-प्रतिशत माता पिता इस ओर से बिलकुल उदासीन रहते हैं, जिसका मुख्य कारण इस विषय सम्बन्धी हमारा अज्ञान है। इसके लिए हमें निम्न बातें ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

जब बालक गर्भ में हो, तब उसकी गर्भवती माता के भोजन का विशेष ध्यान रखना चाहिए। उसके भोजन में विटामिन 'डी' प्रचुर मात्रा में होना चाहिए। योरोपीय देशों में बच्चे के तीन सप्ताह के होने पर उसे ४८० यूनिट विटामिन 'डी' दिया जाने लगता है, जो कि २० बूँद काडलिवर आयल दिन में तीन बार देने से प्राप्त होता है। आवश्यकतानुसार अधिक दिया जा सकता है। धीरे-धीरे विटामिन 'डी' की मात्रा बढ़ाकर १५०० यूनिट प्रतिदिन कर दी जाती है। कच्चे अण्डे की जर्दी भी दी जा

सकती हैं, परन्तु भारत में प्रकृति की उदारता से सूर्य इतना सुलभ है कि हमें इन सब वस्तुओं का प्रयोग विशेष आवश्यकता पड़ने पर ही करने की जरूरत हैं। यहाँ तो बस इतने से ही काम चल जाता है कि बालकों को रोज़ खुली हवा और धूप में खेलने दिया जाय और उनके शरीर का अधिक भाग मुँह, हाथ और पैर आदि खुले रहने चाहिए। विशेष आवश्यकता पर शरीर में काडलिवर आयल अथवा जैतून के तेल की मालिश कर धूप में बिठाने से विटामिन 'डी' अधिक परिमाण में उत्पन्न किया जा सकता है।

भोजन में कर्बोज की अधिकता नहीं होनी चाहिए। दूध, अण्डे, चोकर सहित आटे के बिसकुट, संतरों का रस, दलिया और यदि हो सके तो मछली देनी चाहिए।

वयस्क अस्थि-विकृति

(Adult Rickets)

कभी-कभी विटामिन 'डी' की हीनता से उत्पन्न दोष अधिक आयु के बालकों में (९ से १४ वर्ष तक) और वयस्क स्त्रियों में (२०-३० वर्ष तक) प्रकट होते हैं। परन्तु यहाँ अस्थि सम्बन्धी लक्षणों की ही प्रचुरता रहती है। बालकों में लम्बी हड्डियाँ अधिक प्रभावित होती हैं वे लच कर झुक जाती हैं और उनके सिरे विकृत हो जाते हैं। रोग की चिकित्सा में मुख्य बात विटामिन 'डी' की हीनता को दूर करना है।

ऑस्टियो मलेशिया

(Osteo malacia)

स्त्रियों में उत्पन्न इस रोग को हम औस्टियो मलेशिया कहते हैं। विटामिन 'डी' की हीनता यहाँ भी मुख्य है। यह हीनता या

तो भोजन में विटामिन 'डी' की कमी होने से उत्पन्न हो सकती है अथवा उसके आत्मीकरण में व्याघात होने से। जैसा कि संग्रहणी में पाचक संस्थान विशेषकर क्षुद्रांत्र-की क्रिया ठीक न होनेसे अन्य खाद्य तत्वों के साथ-साथ विटामिनों के आत्मीकरण में भी व्याघात होता है। परिणामतः विटामिन-हीनता-जनित रोग उत्पन्न होते हैं।

यह रोग (Osteomalacia) उत्तरी भारत के कुछ प्रदेशों में एवं जापान और उत्तरी चीन में बहुत पाया जाता है। प्रायः स्त्रियों में ही होता है। प्रत्येक गर्भ के साथ रोग के लक्षण गुरुतर होते जाते हैं। पर यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि गर्भ रोग का आवश्यक कारण नहीं है। यह रोग कुमारी युवतियों में भी पाया जाता है और कभी-कभी (परन्तु बहुत कम) युवकों में भी देखा गया है। मुख्यतः रोग के लक्षण २० और ३० वर्ष की आयु में प्रकट होते हैं।

लक्षण

दर्द इस रोग का मुख्य लक्षण है। यह विशेषतया कमर और जाँघों में होता है। शीतकाल में यह दर्द तीव्र तर हो जाता है। नितम्ब की हड्डियाँ, छाती की हड्डियाँ, एवं लम्बी हड्डियाँ विकृत हो कर विरूप हो जाती हैं। यह आवश्यक नहीं कि ये सब विकृतियाँ एक ही रोगी में उत्पन्न हों। किसी में नितंबास्थि विकृत होती है तो किसी में छाती की हड्डियों पर असर होता है, तो किसी तीसरे में दोनों ही पर प्रभाव होता है।

वस्तिगह्वर (Pelvis)में उत्पन्न दोषों के साथ-साथ वक्ष और रीढ़ की हड्डियों में भी विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। रीढ़ की हड्डी झुक कर कूबड़ निकल आता है, शिर और ग्रीवा नीचे और आगे झुक आती है और इस भाँति रोगी की ऊँचाई कई इंच छोटी हो

जाती है। रोगी को चलने में कठिनाई होती है और मांस-पेशियों की निर्बलता उसे और भी गुरुतर कर देती है।

कभी-कभी नितम्बास्थियों में विकृति के परिणाम—स्वरूप वस्तिगह्वर-चक्र (Pelvic-outlet) संकीर्ण हो जाता है। ऐसी दशा में गर्भवती स्त्रियों को प्रसवकाल में बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ता है। बच्चे का शिर बड़ी कठिनता से बाहर निकलता है और जननी को बहुत अधिक कष्ट होता है। कभी-कभी यह मार्ग इतना संकीर्ण होजाता है कि बच्चे का शिर इसमें से निकल नहीं सकता उसकी मृत्यु हो जाती है और यदि उसके निकालने का शीघ्र ही कोई उपाय न किया गया तो यह माता के लिये भी साँघातिक सिद्ध होता है।

रोग के ठीक निदान होने पर चिकित्सा सरल है। मुख्य बात विटामिन 'डी'की कमी दूर करना है। इसके लिए हम काडलिवर आयल, हालिबट लिवर आयल, केलसिफरोल अथवा अल्ट्रा वायलेट किरण का प्रयोग कर सकते हैं। रोगी के भोजन में विशेष सुधार करने की आवश्यकता है। दूध, दूध में बने दलिए, अण्डे, मक्खन, पनीर, हरी साग-सब्जी, फल और सूखे मेवों का अधिक प्रयोग करना चाहिए।

रोगीको नियमितरूप से किसी कुशल चिकित्सकके तत्वावधान में रोज़ धूप-स्नान कराना चाहिए। और भारत सरीखे देश में सबसे आवश्यक बात है परदा-प्रथा को दूर करना। भारत में सुलभ सूर्य इस परदे की कुप्रथा के कारण हमारी स्त्रियों और माताओं के लिए दुर्लभ रहता है (विशेषतः मुस्लिम समाज में)

इस भाँति अब यह विदित है कि हम अपने बालकों, माताओं एवं स्त्रियों की दिनचर्या एवं उनके भोजन पर तनिक सा भी ध्यान दें तो हम उन्हें कितनी सुगमता से इन अनिष्टकारी रोगों के शिकार होने से बचा सकते हैं।

विटामिन 'ई'

इस खाद्य-तत्व का अनुसन्धान अभी हाल ही में हुआ है। सबसे प्रथम सन १९२१ ई० में 'ईवान्स' और 'विशप' नामक वैज्ञानिकों ने यह खोज की कि खाद्य-पदार्थों में किसी विशेष तत्व की कमी से सन्तानोत्पत्ति क्रिया में व्याघात होता है। उन्होंने अपने प्रयोग मादा चूहों पर किए थे। इस खाद्य-तत्व हीन भोजन से उनमें बन्ध्यापन उत्पन्न हो गया और यदि गर्भ रहा भी तो पूरा समय का होने के पहले ही गर्भपात हो गया अथवा गर्भ गर्भाशय में ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। बाद में इन चूहों के भोजन में कुछ प्राकृतिक खाद्य पदार्थ बढ़ा देने पर उपर्युक्त दोष जाता रहा और उन्हीं चूहों में सन्तानोत्पत्ति क्रिया ठीक रूप में होने लगी। १९२२ ई० में इस नए खाद्य-तत्व का नामकरण विटामिन 'ई' किया गया। प्रारम्भ की खोज से यह मालूम हुआ कि यह विटामिन अन्य पदार्थों की अपेक्षा गेहूं के अँकुओं से तैयार किए गए तेल में अधिक मात्रा में विद्यमान है। इसके बाद की समस्त खोजें इस विटामिन के पृथक्करण एवं रसायनिक संगटन के प्रयत्न में हुई। अन्त में सन् १९३६ ई० में ईवान्स और इमर्सन आदि इसके पृथक्करण में सफल हुए। उन्होंने उपर्युक्त तेल से आल्फा एवं बीटा टोकोफरोल नामक दो अल्कोहल वर्गीय पदार्थ पृथक किए जिनमें से कि अल्फा टोकोफरोल अधिक शक्तिशाली पाया गया।

अन्त में सन् १९३८ में प्रोफेसर कैरर अपने अन्य साथियों के साथ इस विटामिन के रसायनिक संगठन में सफल हुए। इस भाँति हमें इस नये खाद्य-तत्व का ज्ञान अभी हाल ही में प्राप्त हुआ है।

विटामिन 'ई' भी 'ए' और 'डी' की भाँति ही वसा में घुलनशील विटामिन है। यह विटमिन निम्न पदार्थों में पाया जाता है :—

अनाजों के अंकुओं (विशेषतया गेहूँ के) और उनके तेलों में, बिनौले के तेल एवं ताड़ के तेल में, हरी शाक-भाजियों में विशेषतया सलाद में। अंडे की ज़र्दी, दूध और मक्खन में भी यह विटामिन कुछ अंशों में पाया जाता है।

अभी तक इस विटामिन की यूनिट नहीं स्थिर की गई है और न इसकी दैनिक आवश्यकता का ही ज्ञान है।

विटामिन 'ई' के कार्य तथा उसकी हीनता से उत्पन्न दोष

स्त्री और पुरुष दोनों में यह विटामिन सन्तानोत्पादिनी शक्ति को स्थिर रखने के लिए आवश्यक है इसकी कमीसे स्त्रियाँ बन्ध्या हो जाती हैं। प्रारम्भ में पुरुषों में इसकी कमी से उनके शुक्र-कीटों (Sperms) की शक्ति कम हो जाती है और धीरे-धीरे उस मनुष्य का शुक्र शुक्र-कीट विहीन (Aspermia) हो जाता है। शुक्र-ग्रन्थि (Testes) के शुक्रकीट उत्पन्न करने वाले कोषों का क्षय हो जाता है।

स्त्रियों में इनकी कमी से डिम्बग्रन्थि (Ovary) और डिम्ब उत्पादन क्रिया (Ovulation) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। डिम्ब का शुक्राणु से संयोग भी ठीक से होकर भ्रूण अथवा गर्भ सेल ठीक से बन जाता है। अब इसके बाद की समस्त

क्रियाओं का सम्पादन ठीक से होने के लिए विटामिन 'ई' की उपस्थिति आवश्यक है। ऐसी दशा में विटामिन 'ई' की हीनता से भ्रूण (foetus) के विकास में व्याघात होता है और गर्भ पूरे समय का होने के पहले ही या तो मर जाता है अथवा गर्भपात हो जाता है। ऐसी स्त्रियों को गर्भ धारण करने पर भी बार-बार गर्भपात हो जाता है। इस भाँति यह स्पष्ट है कि यह विटामिन स्त्रियों के गर्भ धारण करने के लिए आवश्यक है, इसलिए हम इसे 'गर्भ संस्थापक विटामिन' भी कह सकते हैं।

उपर्युक्त की अपेक्षा अब हम विटामिन 'ई' को निम्न कार्यों के लिए भी आवश्यक समझते हैं।

विटामिन 'ई' हमारे स्नायविक संस्थान(Nervous System) और मांसपेशियों के ठीक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। किस भाँति ये विटामिन इनके स्वास्थ्य से सम्बन्धित है यह अभी हम भली भाँति नहीं जानते। इसकी हीनता से ग्रसित चूहों के बच्चे उत्पन्न होने पर पिछले पैरों की निर्बलता से पीड़ित पाए गए हैं।

हाल ही में यह सोचा जाने लगा है कि यह विटामिन किसी प्रकार पिट्यूटरी (Pitutary) अथवा 'हाइपोफाइसिस' नामक ग्रन्थि के स्वास्थ्य से भी सम्बन्धित है। इसकी हीनता से उस ग्रन्थि के अगले भाग का क्षय हो जाता है।

हाल ही में इस विटामिन का कुछ सम्बन्ध डिम्ब ग्रन्थि में डिम्ब बनकर निकलने के पश्चात बचे हुए कोषों से (Corpus Luteum) एक रस विशेष बनने से भी पाया गया है।

परन्तु अभी यह सब बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में है। इनसे विटामिन 'ई' के सम्बन्ध का पूर्ण ज्ञान हमें अभी भली प्रकार प्राप्त नहीं हो सका है और इन पर प्रयोग हो रहे हैं। परन्तु गर्भ सँस्थापन के लिए विटामिन 'ई' का उत्तरदायित्व और उसकी आवश्यकता पूर्णरूपेण निश्चित है। अभी इस

विटामिन का प्रयोग गर्भपात की दशाओं में लाभ के साथ किया जाता है। विटामिन 'ई' हीनताजनित शुक्राणु विहीनता में भी इसके प्रयोग का प्रयत्न हो रहा है। परिणाम अभी तक स्पष्ट नहीं है। कुछ स्नायविक एवं मांसल व्याधियों में भी यह विटामिन कुछ सफलता के साथ प्रयोग किया गया है। परन्तु अभी इस विटामिन सम्बन्धी ज्ञान में बहुत कुछ विकास की सम्भावना है।

विटामिन 'के'

विटामिन 'के' भी वसा में घुलनशील विटामिन है। 'ई' की ही भाँति इसका पता भी हाल ही में लगा है। सबसे प्रथम सन् १९३४ में 'डैम' नामक वैज्ञानिक ने इसकी खोज की और कैरर ने सब से प्रथम १९३९ में अल्फाअल्फा नामक घास से पूर्ण विशुद्धावस्था में इसका पृथक्करण किया। तत्पश्चात् इसके रसायनिक उपादान का पता लगाया गया।

विटामिन 'के' के कण

चित्र नं० ८

प्राकृतिक रूप में यह हरी शाक-भाजियों में पाया जाता है। पालक, करमकल्ला और अल्फाअल्फा घास आदि में यह खाद्य तत्व होता है। और यकृत से प्राप्त वसा में भी यहविद्यमान है।

इसकी अन्तर्राष्ट्रीय यूनिट अभी तक स्थिर नहीं की गई है और न हमें इसकी दैनिक आवश्यकता का ही ज्ञान है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है इस विटामिन के आत्मीकरण के लिए भी वसा में घुलनशील अन्य विटामिनों की भांति पित्त की उपस्थिति अत्यावश्यक है क्योंकि जब तक वसा का आत्मीकरण ठीक-ठीक न होगा, उसमें घुलनशील विटमिनों के आत्मीकरण में भी व्याघात होगा। वसा के ठीक-ठीक आत्मीकरण के लिए पित्त की उपस्थिति आवश्यक है । इसलिए उन दशाओं में जिनमें कि पित्त हमारी आँतों में नहीं आता अथवा बहुत कम आता है उनमें वसा में घुलनशील विटामिनों की हीनता उत्पन्न हो जाती है। उदाहरणार्थ जब पित्त-स्रोत नलिका में रुकावट होती है (Obstructive Jaundice) तो रोगी विटामिन 'के' हीनता के दोषों से पीड़ित हो जाता है।

विटामिन 'के' की आवश्यकता अथवा कार्य एवं उसकी हीनता से उत्पन्न हुए दोष आगे वर्णित हैं। इस विषय में अभी हमारा ज्ञान बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में है। इसके कार्य की विवेचना करने से पहले निम्नाँकित को ध्यान में रखने से सुविधा होगी:—

हमारे शरीर के अंग-प्रत्यंग में रक्तकेशिकाओं का जाल बिछा हुआ है जिनमें सदैव (जब तक हम जीवित हैं) अवरोध गति से रक्त-परिभ्रमण हुआ करता है। यदि हमारे किसी अंग में कुछ चोट लग जाती है तो कुछ रक्त केशिकाओं के फट जाने से उस भाग से रक्त-स्राव होने लगता है। परन्तु प्रकृति रक्त जैसे आवश्यक पदार्थ को इस भाँति नष्ट होते नहीं देख सकती और हम नित्य ही देखते हैं कि जब तक चोट इतनी अधिक नहीं होती कि कोई रक्तवाहिनी नलिका कट गई हो तब तक रक्तस्राव शीघ्र ही बन्द हो जाता है। उस स्थान पर खून जमकर पपड़ी बन जाती है। इसके लिए कई बातें उत्तरदायी हैं जिनमें से रक्त जमने की क्रिया (Coagulation) भी एक मुख्य क्रिया है।

शरीर से निकलने के पश्चात् रक्त तरल नहीं रहता, वह गाढ़ा होने लगता है और शीघ्र ही लुआवदार होकर जम जाता है। यह रक्त जमकर टूटी-फूटी रक्त केशिकाओं के खुले हुए मुंह बन्द कर देता है और थोड़ी-सी देर में रक्तस्राव स्वतः बन्द होजाता है।

रक्त जमने की इस क्रिया को यहाँ विस्तारपूर्वक वर्णन करना असंगत होगा परन्तु इतना जानना आवश्यक है कि इस क्रिया के लिए प्रोथ्रोम्बिन नामक पदार्थ की उपस्थिति आवश्यक है। इस पदार्थ का निर्माण यकृत में होता है और इसके निर्माण के लिए रक्त में विटामिन 'के' की उपयुक्त मात्रा में उपस्थिति आवश्यक है।

इस भाँति अब यह स्पष्ट है कि विटामिन 'के' का रक्त जमने की क्रिया से कितना घनिष्ट सम्बन्ध है। इसकी हीनता से रक्त में प्रोथ्रोम्बिन की मात्रा कम हो जाती है परिणामतः रक्त जमने की क्रिया में बिलम्ब होता है। ऐसे मनुष्यों में एक बार किसी स्थान में चोट लगने पर बड़ी देर तक रक्तस्राव हुआ करता है। उनमें स्वतः रक्तस्राव की प्रवृत्ति हो जाती है।

इस विटामिन का प्रयोग कुछ दशाओं में ऑपरेशन करने से प्रथम उनके रक्त जमने की क्रिया को बढ़ाने के लिए किया जाता है। रक्तस्राव की अन्य दशाओं में भी इसका प्रयोग किया गया है। परिणाम आशाजनक प्रतीत हुआ है।

विटामिन 'ई' की भाँति 'के' के विषय में भी हमारा अब तक का ज्ञान अधूरा और अपनी बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में है।

विटामिन 'एफ'

वसा में घुलनशील मुख्य विटामिनों की विस्तृत विवेचना की जा चुकी है। अब हम जल में घुलनशील विटामिनों का वर्णन करेंगे। परन्तु इससे पहले कि हम इनकी विवेचना प्रारम्भ करें वसा में घुलनशील एक अन्य विटामिन का नाम ले देना असंगत न होगा।

यहाँ हमारा अभिप्राय विटामिन 'एफ' से है। इसका पता भी हाल ही में लगा है और इसके विषय में अभी हमारा ज्ञान बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में और अधूरा है। बस यहाँ इतना जानना ही काफ़ी होगा कि विटामिन 'एफ' वसा में घुलनशील एक खाद्य-तत्व है। यह वनस्पति और जन्तु-जनित तैलों में बहुत ही भिन्न मात्राओं में पाया जाता है। इसकी यूनिट अभी स्थिर नहीं की गई है और न हमें इसकी दैनिक आवश्यकता का ही ज्ञान है।

जहाँ तक इसके कार्यों का सम्बन्ध है इतना कहना काफ़ी होगा कि यह शरीर की वृद्धि और त्वचा के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। इसकी हीनता से त्वचा अस्वस्थ हो जाती है। अकौता, त्वचा का सूखा और खुरदरापन आदि दशाओं में इसका प्रयोग प्रारम्भ किया गया है। परिणाम अभी तक निश्चित नहीं है।

विटामिन 'बी'

१८९० ई० में एकमैन नामक वैज्ञानिक ने यह कहा कि चावल के छिलकों में जल में घुलनशील एक और पदार्थ विद्यमान है जो कि हमारे जीवन के लिए नितान्त आवश्यक है और विटामिन 'सी' से भिन्न है। बाद में यह खाद्यतत्व अन्य अनाजों के छिलकों और अँकुओं में पाया गया और बहुत से वनस्पति एवं पशुजन्य पदार्थों में भी यह विद्यमान है।
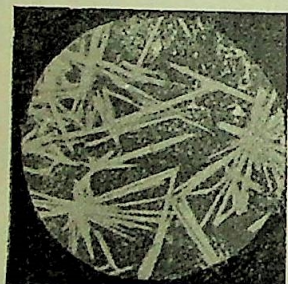
चित्र सं० ६
विटामिन बी १ के कण
(crystals)

लगभग ३० वर्ष बाद अथवा १९२० ई० के बाद की खोजों ने यह स्पष्टकर दिया कि इस पदार्थ में बहुत से खाद्यतत्व सम्मिलित हैं। यह खाद्यतत्व एक—दूसरे से बहुत भिन्न हैं और अब वटामिन 'बी' (संयोजित) के अन्तर्गत वर्णित किए

जाते हैं। जैसे-जैसे इनकी खोज होती गई और इनके विषय में ज्ञान बढ़ता गया इनके नाम क्रमशः विटामिन बी १, बी २ आदि रखे गए। बाद की खोजों ने स्पष्ट किया कि विटामिन बी २ में भी दो भिन्न खाद्यतत्व सम्मिलित हैं और अब ये विटामिन बी २ (सँयोजित) के नाम से पुकारे जाते हैं। विटामिन बी (संयोजित) के अन्तर्गत अब तक ज्ञात निम्न खाद्यतत्व सम्मिलित हैं:—
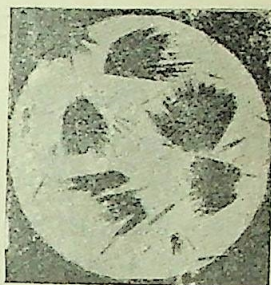
चित्र सं० १०
राइबोफ्लेविन के कण
(crystals)

(१) विटामिन बी १ अथवा बेरी-बेरी अवरोधक विटामिन।
(२) विटामिन बी २ (संयोजित)

(अ) पलाग्रा अवरोधक तत्व (ब) राइबोफ्लेविन।

(३) विटामिन बी ३,
(४) ,, बी ४,
(५) ,, बी ५,
(६) ,, बी ६,

विटामिन बी १ एवं बी २ (संयोजित) हमारे जीवन के लिए नितांत आवश्यक है। विटामिन बी ३, ४, ५ और ६ आदि हमारे लिए इतने महत्वपूर्ण नहीं हैं और इनके विषय में अभी हमारा ज्ञान अधूरा है इसलिए पहले हम विटामिन बी १ और बी २ की विस्तृत विवेचना करेंगे।

विटामिन बी १

यह खाद्यतत्व जल में घुलनशील है। सम्पूर्ण विशुद्धावस्था में इसका पृथक्करण भी किया जा चुका है। रसायनिक प्रयोगशाला में अब इसका रसायनिक संगठन भी सम्भव है (चित्र सं० ९)। १९४० में ब्रिटिश सरकार ने यह घोषणा की थी कि ब्रिटेन में प्रतिवर्ष लगभग १० लाख पौंड से अधिक धन विटामिन बी १ के रसायनिक निर्माण के लिए व्यय किया जायगा और इस भाँति निर्मित यह खाद्यतत्व देश भर में (ब्रिटेन) सफ़ेद आटे की रोटी में मिलाया जायगा जिससे कि विटामिन बी १ हीनता न उत्पन्न होने पाये।

यूनिट

विटामिन बी १ की १ यूनिट=(प्रयोगशाला में संगठित विटामिन बी १ की) ३ मिलीग्राम।

दैनिक आवश्यकता

इस विटामिन की दैनिक आवश्यकता मनुष्य की आयु एवं भार पर निर्भर होने के साथ-साथ उसके भोजन से प्राप्त शक्ति पर भी निर्भर करती है। गर्भवती स्त्री एवं धात्री माता को पुरुष की आवश्यकता से ३ से ५ गुना अधिक विटामिन बी १ की आवश्यकता है। बच्चों को युवा पुरुष की अपेक्षा अपने भार के अनुपात से अधिक विटामिन बी १ की आवश्यकता है। नीचे दी गई तालिका में इन भिन्न-भिन्न दशाओं की दैनिक आवश्यकता का पारिमाणिक अनुमान देने का प्रयत्न किया गया है।

विटामिन बी १ की दैनिक आवश्कता (अन्तर्राष्ट्रीय यूनिट में)

बच्चे (शरीर के भार और भोजन से प्राप्त शक्ति के अनुसार)	५०–३०० तक
युवा पुरुष—	
भोजन से प्राप्तशक्ति २५०० कैलोरी ❀	३००
,, ,, ३००० ,,	३७५
,, ,, ३५०० ,,	४५०
,, ,, ४००० ,,	५२५
गर्भवती स्त्री और दूध पिलाने वाली माँ	१२००-१५००
औसत (प्रति मनुष्य)	५०० यूनिट

(❀ भोजन से प्राप्त शक्ति की पारिमाणिक व्याख्या के लिए निश्चित आधारभूत इकाई का नाम कैलोरी है।)

उद्‌गम

चावल, गेहूँ तथा अन्य अनाजों के बाहरी कोटों (भूसी) में बी १ विटामिन की अधिकता होती है। इस लिए यह विटामिन घर में साफ किए गए धान से (चित्र सं० १२) निकले चावल और चोकर सहित आटे की रोटी में अधिक होता है। मशीन से साफ किये चावल और चोकर विहीन आटे अथवा मैदे में बिल्कुल नहीं रहता। इस विटामिन का सबसे अधिक अनुपात दालों में होता है। साधारणतः माँस, मछली, अन्डे, सब्जी, फल तथा दूध में बेरी-बेरी अवरोधक विटामिन कम होता है। भुजिया, उसना चावल अथवा उबले हुए धान के चावलों में मिलों में कुटने के बाद भी बेरी-बेरी को रोकने के लिए पर्याप्त बी १ विटामिन बच रहता है।

भोजन में इस विटामिन की कमी हो जाने का सबसे अधिक

खतरा तब होता है जब कच्चे धान से निकले हुए चावलों को मिलों में खूब कूटा जाता है और इस कुटे हुए चावल का अंश भोजन में सबसे अधिक रहता है और साथ में दाल इत्यादि का अंश कम रहता हैं। यदि यह चावल खाया जाए और साथ में प्रति दिन १॥ छटाँक के लगभग दाल खाई जाए तो भी बेरी-बेरी का खतरा नहीं रहता। भोजन में दाल, सब्जी और फलों की जितनी ही कमी रहती है उतना ही भोजन में अरवा अथवा कच्चे धान के कुटे हुए चावलों का भाग घटाने की अधिक आवश्यकता होती है।

चावलों में इस विटामिन की कुछ कमी धोने और उबालने के समय हो जाती है। किन्तु यह कमी कच्चे धान से बने चावलों में उबले धान के चावलों की अपेक्षा अधिक होती है। जिन निर्धन व्यक्तियों के भोजन में चावल के अतिरिक्त अन्य खाद्य पदार्थों का अनुपात बहुत कम होता है और वे कच्चे धान के चावल का ही उपयोग करते हैं जिसमें उपर्युक्त विटामिन की मात्रा धोने के कारण और भी घट जाती है, ऐसे व्यक्तियों के भोजन में इस विटामिन की बहुत अधिक कमी होने का डर रहता है। दूध में अधिकाँश पोषक तत्वों की अधिकता रहती है किंतु विटामिन बी १ इसमें भी कम होता है।

डा० एक्रॉयड, बी० जी० कृष्णन, आर० पासमोर और ए० आर० सुन्दर राजन आदि ने कुनूर (दक्षिण भारत) प्रयोगशाला में विटामिन बी १; चावल में उसकी उपस्थिति, पैदा होने से भोजन से पहले तक की समस्त क्रियाओं का चावल में उपस्थित इस विटामिन की मात्रा पर प्रभाव एवं भारत में बेरीबेरी आदि विषयों पर बहुत परिश्रम पूर्वक अत्यंत विस्तृत अनुसंधान और अध्ययन किया है। गरीब भारत की अधिकाँश जनता अपने लिये आवश्यक शक्ति को प्राप्त करने के लिए

सस्ते कर्बोज पदार्थों पर ही निर्भर करती है जिनमें से चावल सबसे मुख्य है। केवल पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, सिन्ध, पंजाब और संयुक्तप्रांत के कुछ पश्चिमी जिलों को छोड़कर समस्त भारत का मुख्य भोजन चावल ही है। और आज कल जनता की प्रवृत्ति मशीन का साफ किया हुआ चावल प्रयोग करने की ओर बढ़ रही है। इस लिए हम विषय को यहाँ अधिक विस्तार के साथ देना चाहते हैं। हम उपर्युक्त विद्वानों द्वारा अध्ययन की गई कुछ उन बातों का उल्लेख करेंगे जिनका जानना हमारे लिए आवश्यक है।

मशीन से साफ किया गया चावल

मशीन से साफ किये जाने की क्रिया से चावल में उपस्थित अधिकांश विटामिन निकल जाता है। चावल जितना ही अधिक मशीन से कूटा जाता है उसमें से उतना ही अधिक विटामिन कम होजाता है, क्योंकि चावल एवं अन्य अनाजों में भी विटामिन बी केवल बाहरी भूसी और अँकुवों में रहता है। इसीलिये चावल की जितनी ही अधिक कुटाई होगी उतनी अच्छी तरह बाहर की भूसी निकल जायगी और उतना ही अधिक विटामिन कम हो जायगा। यह निम्न तालिकाओं से स्पष्ट है—

कच्चे धान से निकाला गया (अरवा चावल)	विटामिन बी १ माइक्रोग्राम प्रति ग्राम चावल में
केवल धान से निकाले जाने के बाद	४.०
प्रथम पालिश के बाद	१.८
दूसरी पालिश के बाद	१.०
तीसरी पालिश (बाजार में भेजे जाने योग्य)	०.७

[गेहूं पिसने पर इसका बाहर का छिलका चोकर के रूप में अलग हो जाता है— यह विटामिन बी १ में विशेष धनी होता है]
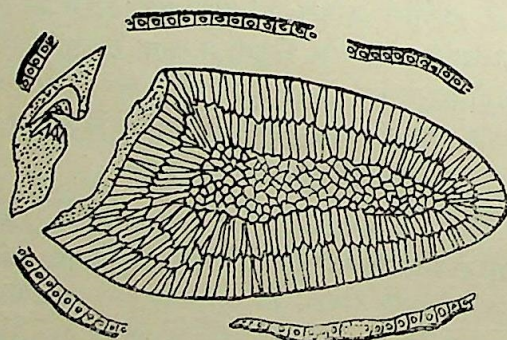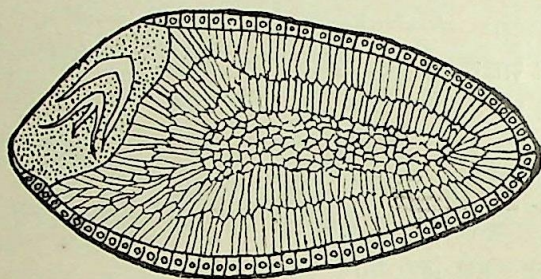
चित्र सं०-११

(२) विभिन्न प्रकार के चावलों में उपस्थित विटामिन बी १ (माइक्रोग्राम प्रति ग्राम चावल में)

धान का छिलका उतारा हुआ		४.०
स्याम का मशीन से कुटा अरवा चावल		१.१
बरमा का मशीन से कुटा टूटा अरवा चावल		०.५
हैदराबाद का मशीन से कुटा अरवा चावल		१.२
मशीन से कुटा उसना चावल	कानानूर का चावल	१.७
	अनामलाय का चावल	२.१
	कूनूर का चावल	२.२

१—धान
२ घर का कुटा चावल
३ मशीनकाकुटाचावल
(बाहरी लाल छिलके के साथ विटामिन बी १ भी निकल गया है)
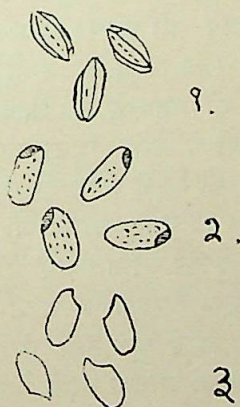
चित्र सं० १२

अरवा एवं उसना चावल में बिटामिन बी१

कच्चे धान से निकाले गये चावल को अरवा चावल और

चावल निकालने से पहले उबाले गये धान से निकले चावल को उसना चावल कहते हैं।

लगभग ३० वर्ष पहले सबसे प्रथम यह देखा गया कि अरवा चावल खाने वालों को अपेक्षा उसना चावल खाने वालों को बेरी बेरी कम होती है। बाद के प्रयोगों से यह भी स्पष्ट हो गया कि बेरीबेरी के रोगी को अरवा चावल की जगह उसना चावल देना प्रारम्भ कर दिया जाए तो वह अच्छा हो सकता है और इन चावलों के प्रयोग से यह रोग रोका जा सकता है। प्रारंभ में यह सोचा गया कि उसना चावल अरवा चावल की अपेक्षा मशीन में कम कुटा होता है। परंतु डा० एक्रॉयड के बाद के प्रयोगों ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसना चावल में मशीन द्वारा खूब कूटे जाने के बाद भी अरवा चावल की अपेक्षा अधिक बेरीबेरी अवरोधक तत्व रहता है। उन्होंने इसका निम्न कारण बताया है। धान को उबालने की क्रिया में चावलों की बाहरी भूसी और अँकुओं में निहित विटामिन का कुछ भाग वहाँ से निकल कर चावल की मिंगी में अन्दर तक व्याप्त हो जाता है और अब इस चावल को चाहे कितनी भी कुटाई की जाए विटामिन का वह भाग जो इस भाँति व्याप्त हो गया है चावल ही में रहेगा। इसलिए उसना चावल में अरवा चावल की अपेक्षा मशीन से खूब अच्छी तरह कूटे जाने के बाद भी बेरीबेरी अवरोधक तत्व अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में रह जाता है।

चूंकि उसना चावलों में अरवा की अपेक्षा अधिक विटामिन बी १ होता है इसलिए उसना चावलों की भूसी में अरवा की भूसी से कम बी १ विटामिन होगा। (देखिए निम्न तालिका)

अरवा एवं उसना चावलों की भूसी में विटामिन बी १
(माइक्रोग्राम प्रति ग्राम में)

कुटाई का समय	अरवा चावल की भूसी	उसना चावल की भूसी
०–५ वें मिनट तक	४५	२५
५–१० वें मिनट तक	५५	१६
१०–१५ वें मिनट तक	३२	१५
१५–२० वें मिनट तक	११	११

पके चावल में विटामिन बी १

पकाने पर चावल में उपस्थित इस विटामिन की मात्रा और भी कम हो जाती है। प्रत्येक प्रान्त, ज़िले और घर में चावल विभिन्न तरीकों से पकाए जाते हैं इसलिए इस विषय पर कोई निश्चित पारिमाणिक अनुपात देना कठिन है। निम्न प्रकार से पकाए गए चावलों में प्राप्त हुई इस विटामिन की कमी का अध्ययन किया गया है—

पहले लगभग ३।। छटाँक चावल तीन बार, हर वार लगभग ५।। छटाँक पानी के साथ, कुल पाँच मिनट तक धोया गया। इसके बाद यह चावल लगभग १।। सेर उबलते हुए पानी में पकने के लिए छोड़ दिया गया। ठीक पक जाने के बाद माँड़ निकाल दिया गया जो कि लगभग सेर भर था। इस भाँति पके चावलों, धोवन और माँड़ में उपस्थित विटामिन बी १ इस भाँति था:—

(विटामिन बी १ माइक्रोग्राम/ग्राम)

चावल	बगैर पकेचावलमें	पकायेगएचावलमें	प्रतिशत विटामिन उपस्थित		
			पकेचावल में	माँड़में	धोअनमें
अरवा चा० घर का कुटा	२.३	०.७	३३	३३	३३
अरवा चा.मशीनका कुटा	०.९	०.१	१५	३०	५५
उसना चा०घर का कुटा	२.५	१.६	६०	३०	१०
उसना चा. मशीनका कुटा	२.१	१.०	४५	१५	४०

इस भाँति यह स्पष्ट है कि पकाने और धोने से कच्चे चावल में उपस्थित विटामिन का अधिकांश भाग धोवन और माँड़ में निकल जाता है। लगभग केवल ३५ प्रतिशत पके चावल में रह जाता है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उसना चावलों की अपेक्षा अरवा चावलों में उपस्थित विटामिन अधिक आसानी से धोवन में निकल जाता है।

इस विषय को हमने काफी विस्तार के साथ दिया है जिसका कारण हम पहले ही बता चुके हैं। अब हम संक्षेप में विटामिन बी १ के कार्य और उसकी हीनता-जनित दोषों का वर्णन करेंगे।

विटामिन बी १ के कार्य

यह पहले ही कहा जा चुका है कि हमें जीवित रहने के लिए शक्ति की आवश्यकता है। और यह शक्ति हमें भोजन से प्राप्त होती है। हमें शक्ति प्रदान करने वाले भोजनों में वसा और

कर्बोज मुख्य हैं। आहारपथ में इन पदार्थों का पाचन और पूर्ण आत्मीकरण होने के बाद हमारे शरीर में इनका ओषजनीकरण होता है जिससे कि यह पदार्थ अन्ततोगत्वा जल और कार्बन डाइऑक्साइड नामक गैस में परिणत हो जाते हैं और इस रसायनिक क्रिया के परिणामस्वरूप शक्ति उत्पन्न होती है जिसका प्रयोग हमारा शरीर करता है।

विटामिन बी १ हमारे शरीर में कर्बोज की ओषजनीकरण क्रिया से सम्बन्धित है। शर्करीय अथवा कर्बोज वर्ग के पदार्थों के पूर्ण आत्मीकरण के लिए इस विटामिन की उपस्थिति नितांत आवश्यक है। इसकी हीनता से कर्बोज के पूर्ण ओषजनीकरण में व्याघात होता है और जल एवं कार्बन डाइऑक्साइड तक पहुँचने के पहले ही यह क्रिया रुक जाती है एवं हमारे शरीर में 'पाईरूविक अम्ल' नामक पदार्थ अधिक मात्रा में एकत्र होने लगता है और इस सबका परिणाम विटामिन बी १ के हीनता जनित दोषों की अभिव्यक्ति में होता है।

हमारे भोजन में कर्बोज पदार्थों का परिमाण जितना ही अधिक होगा, हमारी विटामिन बी १ की आवश्यकता भी उसी के अनुसार होगी जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यही कारण है कि चावल खाने वाली जातियों में इस विटामिन की हीनता अधिक पाई जाती है।

हीनता

यह विटामिन हमारे शरीर की ठीक वृद्धि के लिए भी आवश्यक है। इसकी कमी से हमारे शरीर की ठीक वृद्धि और पूर्ण विकास में व्याघात होता है।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं अन्य विटामिनों की भाँति इसकी हीनता भी निम्न कारणों से हो सकती है.—

(१) भोजन में विटामिन बी १ की कमी से, जैसे कि मशीन के चावल खानेवालों में पाई जाती है।

(२) आत्मीकरण में व्याघात। उदाहरणतः संग्रहणी अथवा साधारण अतिसार में भी कभी-कभी पाचक संस्थान में गड़बड़ी हो जाने के कारण विटामिन के आत्मीकरण में व्याघात होता है और विटामिन की कमी हो जाती है। अधिक शराब पीने वाले व्यक्तियों के पाचक संस्थान की श्लैष्मिक कला अस्वस्थ हो जाती है जिससे कि इस विटामिन का आत्मीकरण भली भाँति नहीं हो पाता और विटामिन बी १ हीनता-जनित दोष प्रकट होने लगते हैं।

(३) विटामिन की आवश्यकता बढ़ जाने पर जैसे कि गर्भवती स्त्रियों में।

आंशिक हीनता

पूर्ववर्णित सभी दशाओं में इस विटामिन की कमी उत्पन्न हो सकती है। आजकल इस विटामिन की पूर्ण हीनता की अपेक्षा आंशिक हीनता बहुत अधिक देखने में आती है। आजकल बहुत से ऐसे केस-जिन्हें साधारण चिकित्सक यों ही टाल देते हैं और कह देते हैं कि 'तुम स्वस्थ हो, तुम्हें कुछ नहीं है, यह सब तुम्हारे अपने मानसिक विचार हैं जो तुम्हें बीमार बनाए रहते हैं।'—सचमुच विटामिन बी १ की आंशिक हीनता के शिकार होतेहैं। यदि कोई कुशल चिकित्सक उनका ठीकनिदान कर उचित चिकित्सा कर देता है तो वे तत्काल ठीक हो जाते हैं नहीं तो उसी भांति रो--रोकर अपना जीवन बिताते हैं। ऐसे रोगियों की मुख्य शिकायतें और उनके मुख्य लक्षण निम्न हैं:—

भूख में कमी, कब्ज, अफारा, दस्त, सिर में दर्द, हाथों पावों में दर्द, कमर एवं शरीर के अन्य भागों में दर्द, कानों में भनभनाहट, आँखों के सामने अंधेरा-सा छा जाना और चिनगारियां छूटना, चक्कर, स्मरणशक्ति की हीनता, चिन्ता और भय सदैव ऐसे व्यक्ति को घेरे रहते हैं। हृदय की धड़कन भी होने लगती है और अन्त में वह बहुत कमजोर हो जाता है और उसकी शक्ति क्षीण होती जाती है और इस भांति उसका सुन्दर जीवन नष्ट होकर भारस्वरूप हो जाता है। ऐसे में यदि वह किसी कुशल चिकित्सक के पास पहुँच गया तो उसका जीवन फिर कुछ ही दिनों में बिलकुल बदल सकता है अन्यथा उसकी दशा और भी शोचनीय होती जाती है।

विटामिन बी१ की पूर्णहीनता से उत्पन्न दोषोंका निदान आंशिक हीनता द्वारा उत्पन्न हुए दोषों की अपेक्षा अधिक सरल है। इस विटामिन की पूर्ण हीनता से 'बेरीबेरी' नामक रोग उत्पन्न होता है।

बेरीबेरी

संसार की समस्त चावल खाने वाली जातियों में यह रोग पाया जाता है। भारत, (चित्र सं० १३) जापान, मलाया, डच ईस्ट इंडीज और फिलिपाइन द्वीप समूह इस रोग के विशेष दुर्ग हैं। न्यूफाउण्डलैंड और लेब्राडर में भी बेरीबेरी पाई जाती है।

इस रोग का कारण, जैसा कि पहले कई बार बताया जा चुका है विटामिन बी १ की पूरी हीनता है। रोग के मुख्य लक्षण इस भांति हैं :—

रोग के लक्षण प्रकट होने में साधारणतया दो-तीन महीने का समय लगता है। रोग का प्रारम्भ धीरे-धीरे होता है। प्रारम्भ
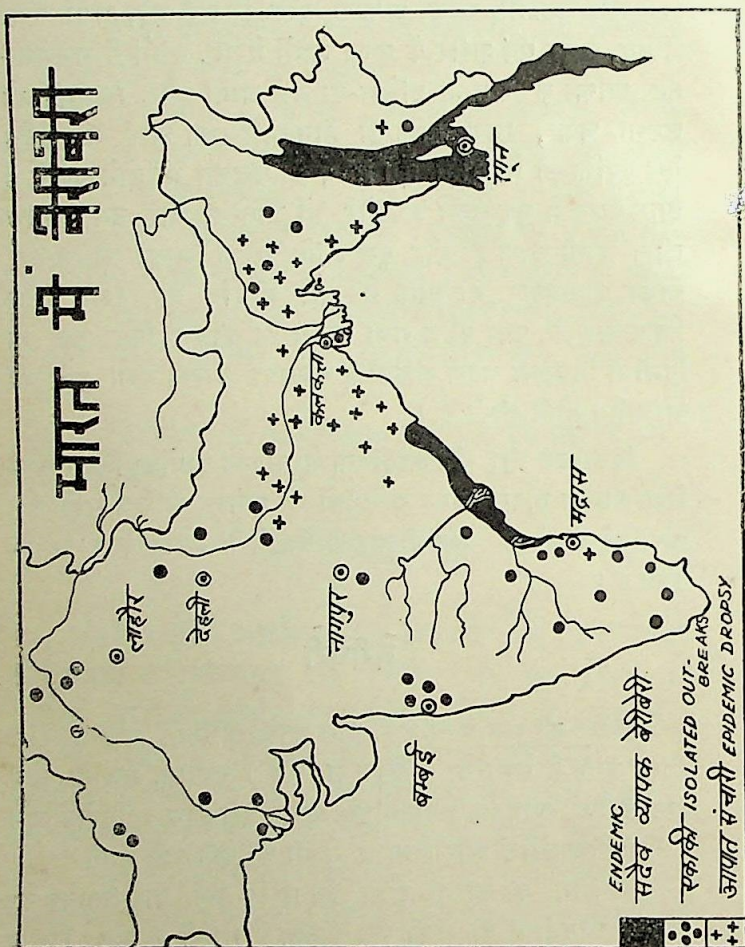
चित्र संख्या-१२

(रॉजर्स और मैगॉ के आधार पर)
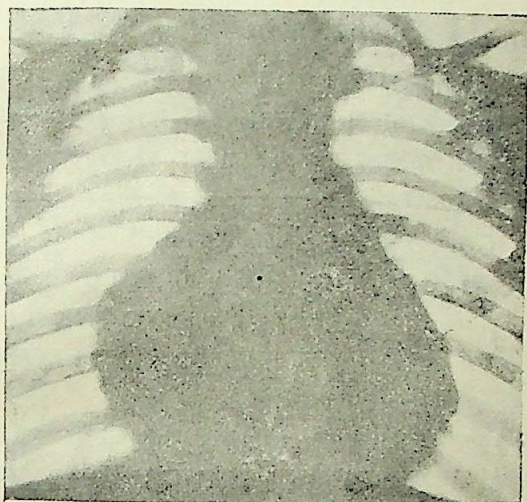
चित्र सं० १४

बेरीबेरी के रोगी के हृदय का एक्स रश्मि चित्र
(मांसपेशियों की निर्बलता के कारण हृदय का आकार बढ़ गया है)

में पेट में विकार उत्पन्न होते हैं, चक्कर और जी मिचली होती हैं। और कभी-कभी कै और दस्त भी होते हैं, बाद में स्नायुओं की शक्ति का ह्रास होने के कारण शरीर के विभिन्न अँगों में पक्षाघात हो जाता है। फिर धड़कन होने लगती है और रोगी की साँस फूलने लगती है। कभी-कभी हृदय की मांसपेशियों की निर्बलता के कारण हृदय की गति बन्द हो जाने का डर रहता है और जलोदर हो जाता है। केवल प्रारंभ को छोड़कर

रोगी का तापमान साधारण रहता है। मुख्यतः बेरी-बेरी दो प्रकार की होती है: —

(१) प्रथम प्रकार की बेरीबेरी वह है जिसमें मुख्य लक्षण हृदय की मांसपेशियों की निर्बलता के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होते हैं। स्नायु की शक्ति के ह्रास के कारण उत्पन्न हुए लक्षण इतने अधिक नहीं होते।

इस में सारे शरीर पर सूजन आ जाती है। सब से प्रथम पैरों पर सूजन आती है। साँस फूलने लगती है और साँस लेने में दिक्कत होती है और हृदय की गति बढ़ जाती है। रोगी के हृदय की गति बन्द हो जाने के कारण उसकी सहसा मृत्यु भी हो सकती है।

(२) दूसरे प्रकार की बेरीबेरी में मुख्यलक्षण स्नायविक शक्ति के ह्रास के कारण उत्पन्न होते हैं। इसमें शरीर पर सूजन नहीं आती। माँसपेशियों का क्षय होता जाता है और उनकी निर्बलता बढ़ती जाती है यहाँ तक कि बाद में रोगी भली प्रकार उठ बैठ और चल भी नहीं पाता। रोग का प्रारंभ और उसके लक्षण बहुत धीरे-धीरे प्रकट होते हैं। (चित्र सं० १५)

(३) कभी-कभी रोग के लक्षण बहुत शीघ्रता से प्रकट होते हैं। ऐसी दशा में हृदय की मांसपेशियों की दुर्बलता से उत्पन्न लक्षण साधारणतया प्रारंभ से ही मुख्य होते हैं। हृदय के कार्य में व्याघात होता है। मूत्र की मात्रा बहुत घट जाती है। ऐसी दशा में कुछ घन्टों से लेकर कुछ ही दिन के अन्दर मृत्यु हो सकती है।

बच्चों में बेरीबेरी

बच्चों में बेरीबेरी मुख्यतः फिलिपाइन द्वीप समूह और जापान में पाई जाती है। ५० प्रतिशत से अधिक में लक्षण जीवन के

चित्र सं० १५
(बेरी बेरी का रोगी)
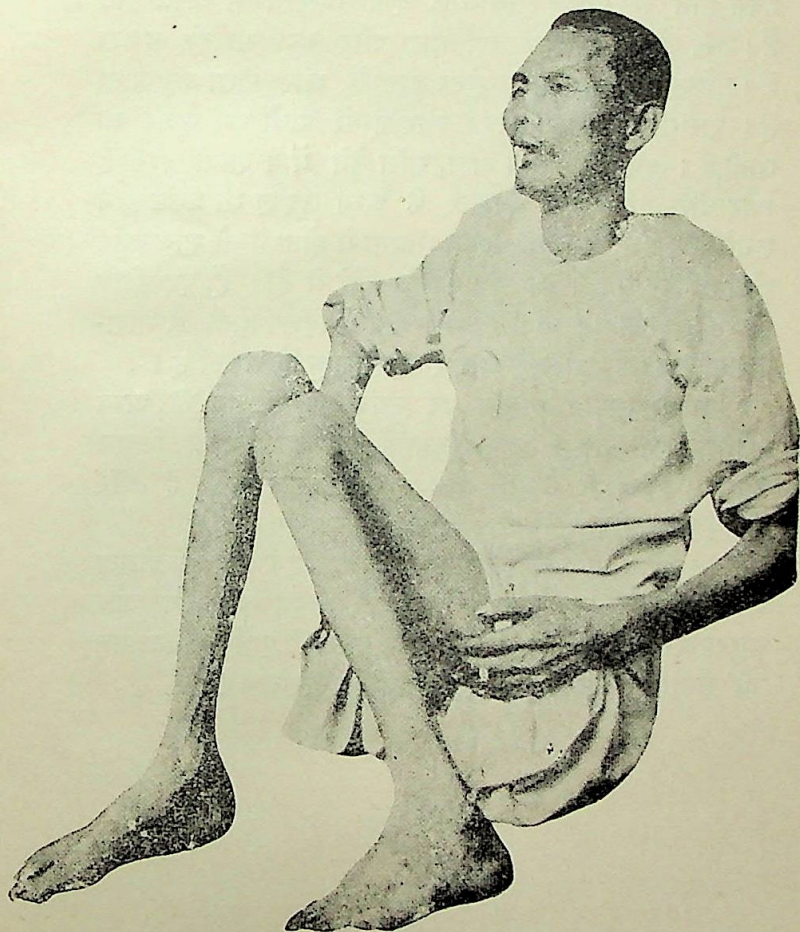
तीसरे और चौथे सप्ताह के बीच में प्रकट होते हैं। रोग के लक्षण धीरे-धीरे और शीघ्र, दोनों ही भाँति प्रकट हो सकते हैं। धीरे-धीरे प्रकट होने से पाचन संस्थान के दोष सबसे प्रथम उत्पन्न होते हैं। भूख में कमी, वमन, अतिसार और कब्ज भी हो सकता है। परिणामतः बच्चा क्षीण होता जाता है और पीला पड़ जाता है। शरीर पर; मुख्यतः चेहरे और हाथों पावों पर सूजन आ जाती है। बच्चा बोल नहीं पाता, साँस लेने में परेशानी होती है और धीरे-धीरे हार्दिक दुर्बलता के अन्य लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं। यदि रोग का प्रारम्भ शीघ्रता से होता है तो मृत्यु बहुत शीघ्र हो सकती है। बच्चे को एकदम दौरे से होते हैं, दर्द होता है, शरीर पीला पड़ जाता है, साँस लेने में दिक्कत होती है, मांश-पेशियाँ सख्त हो जाती हैं और शीघ्र ही मृत्यु हो सकती है।

रोग के निदान में हृदय एवं स्नायविक संस्थान की अन्य व्याधियों को ध्यान में रखना पड़ता है अन्यथा रोग का निदान कठिन है। उचित निदान होने पर चिकित्सा सरल है और ठीक चिकित्सा होने पर रोग प्रारम्भ में सुख-साध्य है।

इस भाँति अब यह स्पष्ट है कि विटामिन बी १ की हीनता आंशिक अथवा पूर्ण किस भाँति हमारे जीवन को व्यर्थ और भारस्वरूप बना सकती है। अब हम आगामी पृष्ठों में विटामिन 'बी' संयोजित वर्ग के अन्य विटामिनों का वर्णन करेंगे।

विटामिन 'बी' २ (संयोजित)

विटामिन बी २ संयोजित के अन्तर्गत दो भिन्न खाद्य तत्व सम्मिलित हैं ।

(१) पलाग्रा अवरोधक तत्व अथवा निकोटिनिक एसिड ।

(२) राइवोफ्लेविन अथवा लेक्टोफ्लेविन । (चित्र सं० १०)

पलाग्रा अवरोधक तत्व

इसे विटामिन 'जी' भी कहते हैं । ये गोश्त और जिगरी में पाया जाता है । अन्य खाद्य पदार्थों में इस खाद्य तत्व की उपस्थिति का ज्ञान अभी बहुत ही अधूरा है अतएव इस विषय पर अभी कोई पारिमाणिक अनुमान देना कठिन है । इसकी यूनिट भी नहीं स्थिर की गई है और न हमें इसको दैनिक आवश्यकता का ही विशेष ज्ञान है ।

हां इतना निश्चित है कि इस वर्ग के अन्य खाद्य तत्वों से भिन्न यह खाद्य तत्व भी हमारे जीवन और स्वास्थ्य के लिये नितांत आवश्यक है। इसकी कमी से पलाग्रा रोग उत्पन्न हो जाता है।

पलाग्रा

यह रोग जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है हमारे भोजन में पलाग्रा अवरोधक तत्व की हीनता से उत्पन्न होता है। मक्का खाने वाली जातियों में अधिक होता है। अमेरिका की दक्षिणी

रियासतों में, मिश्र के निचले भाग में, टर्की, रोमानिया, बालकन प्रदेश, स्पेन और इटली में बहुत पाया जाता है। भारत, चीन, जापान और अफ्रीका के कुछ लोगों में, मेक्सिको, पश्चिमीय भारतीय द्वीप समूह आदि में भी अक्सर यह रोग पाया जाता है।

किसी भी जाति, आयु और लिंग के व्यक्ति इस रोग के शिकार हो सकते हैं परन्तु यह रोग अमीरों की अपेक्षा गरीब जातियों में अधिक होता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है यह रोग निकोटिनिक एसिड की हीनता से उत्पन्न होता है। यह हीनता या तो भोजन में ही हो सकती है अथवा इस खाद्य तत्व के पूर्ण आत्मीकरण न होने के कारण उत्पन्न हो सकती है जैसा कि अधिक शराब पीने वाले व्यक्तियों में हो सकता है। इसका कारण पहले ही बताया जा चुका है। इस भांति यह रोग किसी भी कारण क्यों न उत्पन्न हो ताहम् मुख्य कारण इस विशेष खाद्य तत्व की हीनता होने के कारण रोग के लक्षण, निदान और चिकित्सा प्रत्येक दशा में एक ही सी होती हैं।

लक्षण (प्रारंभिक)

प्रारम्भ में रोगी की भूख बहुत कम हो जाती है, उसके शरीर का भार घटने लगता है, शक्ति क्षीण हो जाती है। हाज़मा ठीक नहीं रहता, अफ़ारा हुआ करता है, वमन, पेट और नाभि के ऊपर जलन हुआ करती है। कब्ज़ हो जाता है, अथवा कभी अतिसार हो जाता है। अनिद्रा, सिर दर्द, धड़कन, चक्कर, झन-झनाहट रोगी को बहुत सताते हैं। उसकी स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है और छोटी छोटी बातें भूलने लगता है। और चिड़चिड़ा स्वभाव का हो जाता है।

इसके बाद त्वचा, पाचक-संस्थान और स्नायविक-संस्थान रोग से प्रभावित होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि किसी एक ही

रोगी के यह तीनों संस्थान प्रभावित हो जायें। किसी रोगी में कोई संस्थान रोग से अधिक प्रभावित होता है तो दूसरे में, दूसरा।

पाचक संस्थान के दोष

रोग के प्रारम्भिक काल में जीभ का अगला सिरा और दोनों किनारे लाल होकर सूज जाते हैं, बाद में पूरी जीभ लाल हो जाती है और सूजन आ जाती है। किनारों पर दांतों के निशान पड़ जाते हैं। किनारों और सिरों पर घाव पैदा हो सकते हैं।

मुंह की श्लैष्मिक कला, तलुआ, मसूड़ों और होठों की भी ऐसी ही दशा हो जाती है। गरम, अधिक मसालेदार और खट्टे पदार्थ खाने से लार अधिक निकलने लगती है और मुँह, जीभ, गले आदि में अधिक जलन होती है।

अन्य लक्षण जी मिचली, वमन और अफारा के रूप में प्रकट होते है। भोजन के बाद पेट में तनाव और अफारा होता है।

प्रारम्भ में दस्त ठीक हो सकते है किंतु कभी कभी मलावरोध हो जाता है। रोग बढ़ जाने में स्थायी रूप से अतिसार हो जाता है—दिन भर दस्त हुआ करते हैं और साथ ही पीड़ा भी होती है।

त्वचा से उत्पन्न लक्षण

शरीर के उन भागों की त्वचा जहाँ सूर्य का प्रकाश अधिक पड़ता है जैसे वक्ष का ऊपरी भाग, हाथ, कलाई और पैरों के ऊपर एवं वे भाग जो सदैव एक दूसरे से रगड़ खाते रहते हैं जैसे जाँघें और स्त्रियों के वक्ष का निचला भाग—ऐसे स्थानों की त्वचा में लक्षण उत्पन्न होते हैं।

प्रारम्भ में उस स्थान की त्वचा लाल हो जाती है, फिर वहाँ सूजन और तनाव हो जाता है इसके बाद खुजली और जलन पड़ती हैं। सम्भवतया कभी कभी छाले भी पड़ जाते हैं। उस स्थान की त्वचा गहरे रंग की और मोटी हो जाती है और उस पर से पपड़ी सी उधड़ने लगती है। अन्ततः उस स्थान की त्वचा का क्षय होने लगता है और त्वचा पतली और झुर्रीदार हो जाती है। सबसे मुख्य बात है कि पलाग्रा में उत्पन्न यह चर्म दोष शरीर के दोनों भागों में बिलकुल समान (सिमिट्रिकल) होते हैं।

स्नायविक संस्थान के लक्षण

रोगी की मानसिक दशा गिरी हुई सी रहती है वह अपने आपको गिरा हुआ अनुभव करता है और भय त्रस्त रहता है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। सिरदर्द और अनिद्रा हो जाती है। हाथ पैरों एवं शरीर के अन्य भागों में दोनों ओर जलन उत्पन्न होने लगती है। बाद में रोगी की जिह्वा हिलने लगती है, हाथ पैर काँपने लगते हैं और सिर भी हिलने लगता है। हाथ पैर सुन्न पड़ जाते हैं और बहुधा रोगी को पक्षाघात हो जाता है।

सम्भव है कि रोगी के स्नायविक संस्थान की यह दशा पलाग्रा प्रवर्तक तत्व के साथ साथ विटामिन बी १ की भी हीनता होने के कारण होती हो।

जब तक कि रोगी के भोजन में स्थायी सुधार नहीं किया जाता लगातार वर्षों तक रोगी की यही दशा रहती है। बीच बीच में कुछ समय के लिए लक्षण कम हो जाते हैं। कभी अधिक हो जाते हैं।

बढ़ी हुई दशा में रोग का निदान सरल है। जिह्वा, मुख और त्वचा के लक्षण मुख्य हैं। परन्तु रोग के प्रारम्भ में जबकि

आरम्भिक लक्षण ही प्रकट हो रहे हों इसका निदान ज़रा कठिन है। रोगी के भोजन के विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त करने से कुछ सहायता मिल सकती है।

भोजन में उपयुक्त सुधार करने और उचित चिकित्सा करने पर रोग आरम्भ में तो बहुत ही सुख-साध्य है। बढ़े हुए रोग में भी शीघ्र लाभ होता है।

रोगी के भोजन में गोश्त, जिगर, दूध, अन्डे आदि अधिक मात्रा में होने चाहिए। जिससे उसे विटामिन बी २ संयोजित उचित परिमाण में मिलने लगे। 'मारमाइट' सरीखे पदार्थ भी प्रयोग किए जाते हैं।

ठीक निदान होने पर रोगी को निकोटिनिक एसिड टेबलेट के रूप में दिया जाता है। २०० से १००० मिलीग्राम प्रतिदिन; आम तौर से ५०० मि० ग्राम काफी होता है। लगभग १० दिन के उपरान्त मात्रा घटा दी जाती है। रोगी की दशा में शीघ्र ही सुधार होने लगता है। साथ में थोड़ा विटामिन बी १ देने से स्नायविक संस्थान भी शीघ्र स्वस्थ हो जाता है।

राइबो फ्लेविन

विटामिन बी २ संयोजित के अन्तर्गत सम्मिलित यह दूसरा खाद्य-तत्व है। यह दूध में अधिक होता है। गोश्त जिगरी और मछली में भी पाया जाता है। करमकल्ला अथवा बन्दगोभी, पालक टिमाटर और मटर इस खाद्य तत्व की प्राप्ति के लिए उत्तम पदार्थ हैं। गाजर और आलू में उपर्युक्त शाकों की अपेक्षा लगभग आधा राइबोफ्लेविन होता है। गाजर के ऊपरी हिस्से में (जो बहुधा फेंक दिया जाता है) शेष भाग से (जो खाया जाता है) लगभग चार गुना अधिक यह खाद्य तत्व होता है। इस

विटामिन को प्राप्त करने के लिए दूध सब से उत्तम साधन है।

इसकी कोई यूनिट नहीं स्थिर की गई है, न हमें इसकी दैनिक आवश्यकता के विषय में ही विशेष ज्ञान है। फिर भी एक मनुष्य की औसत दैनिक आवश्यकता २–३ मिलिग्राम के लगभग अनुमान की जाती है।

जहाँ तक इस विटामिन के कार्यों का सम्बन्ध है इस विषय में अभी हमारा ज्ञान बहुत ही अधूरा है और इसके विषय में अभी निश्चयात्मक रूप से अधिक नहीं कहा जा सकता।

इसकी हीनता से उत्पन्न हुए दोषों का भी पूर्ण ज्ञान अभी हमें प्राप्त नहीं है। इसकी कमी से नेत्रों की कनीनिका में रक्त का संचार बढ़ जाता है होठों के किनारे फट जाते हैं, मुंह के दोनों ओर ओठों के जोड़ों के पास घाव हो जाते हैं। *

कभी कभी सुष्मुना एवं स्नायविक संस्थान की अन्य नाड़ियाँ भी हीनता दोषों से प्रभावित हो जाती हैं। और तब उनके अनुसार अन्यान्य लक्षण प्रकट होते हैं।

---

* राइबोफ्लेविन हीनता की सब से प्रारम्भिक दशा में मुंह और होठोंके कोनों पर की श्लैष्मिक कला का रंग जाता रहता है वह सफेद सी हो जाती है। अधिक हीनता होने पर वहाँ पर की श्लैष्मिक कला फट जाती है और उसमें गहरी दरारें सी पड़ जाती हैं ये दरारें गीली होती हैं और कुछ भूरे से रंगकी पपड़ी अथवा खुरंड से ढकी रहती हैं। ये पपड़ी आसानी से हटाई जा सकती है। ओठों का रंग गहरा लाल हो जाता है। कभी कभी अधरों पर विशेषकर निम्न अधर पर भी पपड़ी जम जाती है। बहुधा नथुनों के पास की त्वचा में खुजली सी होने लगती है और वहाँ की त्वचा चिकनी हो जाती है। यही दशा नेत्रों के चारों ओर की त्वचा, कान और नाक पर भी हो सकती है। त्वचा लाल हो जाती है और बाद में उस से छोटी छोटी चिकनी पपड़ी सी उतरने लगती है।

बी संयोजित वर्ग के अन्य विटामिन

विटामिन बी १ एवं बी २ संयोजित के अलावा और भी कई एक खाद्य-तत्व इस वर्ग में सम्मिलित हैं। परन्तु यह सब मनुष्य के लिए इतने आवश्यक नहीं और न इनके विषय में हमारा ज्ञान ही सन्तोषजनक है इसलिए यहाँ इनके नाम जान लेना भर ही पर्याप्त होगा।

विटामिन बी ३

कबूतरों के शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक है।

विटामिन बी ४

चुहों और मुर्गी के बच्चों में पक्षाघात रोकने के लिए आवश्यक है।

विटामिन बी ५

भी कबूतरों के शरीरका भार ठीक रखने के लिए उत्तरदायी है।

विटामिन बी ६

अथवा विटामिन 'एच' चूहों के चर्म के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

फोलिक एसिड (Folic acid)

अभी हाल ही में फोलिक एसिड नाम से एक और तत्व निकाला गया है। रक्ताल्पता के कुछ रोगियों में इसने आशातीत लाभ दिखाया है। अभी इस पर प्रयोग हो रहे हैं।

इस भाँति अब हम विटामिन बी संयोजित के अन्तर्गत वर्णित सब खाद्यतत्वों एवं उनके हीनता जनित दोषोंसे परिचित हो गए हैं। अब हम विटामिन 'सी' और 'पी' के विषय में संक्षेप में लिखेंगे और उनके हीनता जनित दोषों से परिचित होने का प्रयत्न करेंगे।

विटामिन 'सी'

इसके अनुसन्धान की कथा पहले ही कही जा चुकी है। जब मनुष्य ने नाविक कला का आविष्कार किया और वह जलपथ द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को बड़े-बड़े सागर पार कर आने-जाने लगा तब उसे एक नए रोग का सामना करना पड़ा उन दिनों न तो आज कल की भाँति यात्रा के सुगम साधन थे और न भोजन विषय सम्बन्धी कुछ ज्ञान ही था। बहुधा मल्लाहों को महीनों रक्खे हुए बासी कृत्रिम भोजनों पर आश्रित रहना पड़ता था। फलों और सब्जी आदि के दर्शन भी दुर्लभ रहते थे। तब कभी-कभी किसी जहाज के सारे के सारे यात्री और मल्लाह इस विटामिन रहित भोजन के कारण एक नए रोग के शिकार हो जाते थे। उनके मसूड़ों से खून गिरने लगता था और दाँत ढीले पड़ जाते थे। वे स्कर्वी रोग से पीड़ित हो जाते थे।

कभी-कभी ताजे फलों और शाक-भाजी के व्यवहार से यह रोग स्वतः अच्छा होता देखा गया और तब यह सोचा जाने लगा कि सम्भवतः इस रोग का कारण भोजन में ताजे फलों और शाक-भाजियों आदि की कमी है। अन्ततोगत्वा सन १७४७ में 'लिन्ड' नामक वैज्ञानिक ने अपने क्रियात्मक प्रयोग द्वारा यह कथन सर्वथा सिद्ध कर दिया। उसने दिखाया कि ताजे फलों, विशेष कर नीबू संतरे आदि का हमारे भोजन में होना स्कर्वी

रोकने के लिए नितांत आवश्यक है। अन्त में सन १७९५ में ब्रिटिश एडमायरेलिटो ने अपने मल्लाहों के राशन में नीबू का रस नियमित रूप से सम्मिलित करना आवश्यक समझा।

बस उन दिनों इस विषय पर हमारा ज्ञान यहीं तक सीमित रहा। तब न तो कोई विटामिन 'सी' का नाम ही जानता था और न उसके विषय में इतना विस्तृत ज्ञान ही था। परन्तु वे इतना तो अवश्य जान गए थे कि नीबू आदि में कोई तत्व ऐसा अवश्य होता है जिसकी कमी से स्कर्वी रोग उत्पन्न हो जाता है।

इस विटामिन के आधुनिक ज्ञान सम्बन्धी विस्तृत खोजें और प्रयोग सभी बीसवीं शताब्दि के प्रारम्भिक चरणों में ही हुए हैं। सन् १९२१ में 'जियोरज्राई' एवं 'जिल्वा' नामक वैज्ञानिकों ने विटामिन 'सी' के पृथक्करण के प्रारम्भिक प्रयत्न किए और १९२८ में 'जियोरजाई' इसमें सफल हुआ। सन् १९३२ में पूर्ण रूप से इस विटामिन की उपस्थिति सिद्ध कर दी गई। सन्-१९३३ में 'होवर्थ' 'कैरर' आदि वैज्ञानिक इसके रसायनिक उपादान सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने में सफल हुए। उसी वर्ष 'रीशस्तंन' एवं हावर्थ ने सबसे प्रथम प्रयोगशाला में इस विटामिन का रसायनिक संगठन किया।

इस भाँति इस विटामिन सम्बन्धी विस्तृत ज्ञान भी हमें हाल ही में प्राप्त हुआ है।

विटामिन 'बी' वर्ग के विभिन्न खाद्य तत्वों की भाँति विटा-मिन 'सी' भी जल में घुलनशील विटामिन है।

विटामिन 'सी' हरी शाकभाजियों और ताजे फलों में अधिक होता है। नीबू, सँतरे एवं इसी वर्ग के अन्य फलों में ये विटामिन बहुत अधिक होता है। टिमाटर और केले में भी अधिकता से पाया जाता है। सूखी हुई, बासी शाक-

भाजियों एवं रक्खे हुए फलों में विटामिन 'सी' बहुत कम रह जाता है। इनमें उपस्थित विटामिन 'सी' का अधिकांश भाग इस भाँति रक्खे जाने पर नष्ट हो जाता है।

सूखे हुए अनाजों और साबित दालों में साधारण दशा में यह विटामिन बिल्कुल नहीं होता। परन्तु जब यह गीले होने के उपरांत जमने लगते हैं और इनमें अंकुए निकलने लगते हैं तब इनमें स्वतः विटामिन 'सी' काफी अधिक परिमाण में उत्पन्न हो जाता है। इनमें इस भाँति विटामिन 'सी' उत्पन्न करने का निम्न उपाय सर रोबर्ट मैककेरीसन ने अपनी 'भोजन' नामक पुस्तक में बताया है:—

"साबित दालें, चना, गेहूँ साबित मटर अथवा अन्य कोई भी अनाज पहले २४ घण्टे तक पानी में भीगने देना चाहिए। इसके बाद पानी में से निकाल कर इन्हें या तो गीली ज़मीन अथवा किसी साफ कम्बल अथवा टाट के गीले टुकड़े पर फैलादो और ऊपर से उन्हें किसी गीले कपड़े अथवा गीले टाटसे ढक दो और इसे निरन्तर गीला रक्खो। ऐसा करने के लिए बार-बार पानी छिड़कना आवश्यक होगा। दो-तीन दिन में अंकुए फूट निकलेंगे और प्रयोग करने के लिये तैयार हो जाएँगे।'

"इस भांति जमाए हुये अंकुए सहित अनाज को कच्चा ही खाना चाहिए और यदि पकाना आवश्यक समझा जाय तो कभी भी १० मिनट से अधिक नहीं पकाना चाहिए।"

जब कि ताज़े फल और हरी शाक भाजियां आसानी से न मिल सकें अथवा वे गरीब जो इन्हें नहीं खरीद सकते उपर्युक्त तरीके से काफी विटामिन 'सी' प्राप्त कर सकते हैं। इस भाँति जमाए हुए अन्न में १०-१५ मिलीग्राम विटामिन 'सी' प्रति १०० ग्राम अन्न में हो सकता है।

आँवला और विटामिन सी

पाठकों ने गांव के बड़े बूढ़ों अथवा किसी वैद्य को बहुधा निम्न श्लोक कहते सुना होगा।

धात्री फलं सदा पथ्यम्,
कुपथ्यं वदरी फलम् ॥

अर्थात्—बेर का फल सदैव ही हानिकारक होता है और प्रत्येक दशा में त्याज्य है। परन्तु धात्री फल अथवा आँवले का फल सदैव ही लाभकर होता है और प्रत्येक दशा में ग्राह्य है।

आधुनिक सभ्यता के आडम्बर में पले अधिकांश व्यक्ति इस प्रकार के कथनों में सहसा विश्वास करने को तैयार नहीं होते और कोई-कोई तो इन्हें व्यर्थ की कपोल कल्पनाएँ कहने में भी नहीं चूकते। इसमें उनका दोष नहीं—आज का मस्तिष्क ही कुछ ऐसा हो रहा है कि जब तक वह प्रयोगशाला में उपस्थित जड़ यन्त्रों की सहायता से किसी कथन को सत्य सिद्ध करने की विडम्बना में सफल नहीं हो जाता तब तक वह मनुष्य के अनुभवों पर आधारित इसप्रकार के कथनों पर सहसा विश्वास नहीं करता।

हाल ही में कुनूर अनुसन्धान प्रयोगशाला में आँवला फल के विषय में विस्तृत खोज की गई है। और अब आज का वैज्ञानिक धात्रीं फल के गुणों में विश्वास करता प्रतीत होता है—इस विषय में निम्न अवतरण भारतीय सरकार द्वारा प्रकाशित स्वास्थ्य बुलेटिन नं० २३ से उद्धृत करना उचित मालूम देता है:—

आंवला नामक फल विटामिन 'सी' में बहुत धनी होता है सम्भवतः यह विटामिन सी प्राप्त करने का सबसे उत्तम और धनी प्राकृतिक साधन है। आंवला भारत के समस्त जंगलों में

कुछ खाद्य पदार्थों में निहित
विटामिन सी की मात्रा का
तुलनात्मक चित्रण
प्रत्येक खाद्य पदार्थ का वज़न
(१०० ग्राम)
टमाटर (पका हुआ)
नीबू
पपीता (पका हुआ)
अनन्नास
नारंगी
पालक
गोभी
मिर्च (हरी)
मिर्च (सूखी)
करमकल्ला
धनिया
लाल चौलाई
सैंजन
सैंजन की पत्ती
अमरूद
आँवला
0
१००
200
300
४००
५००
६००
(मिलीग्राम)
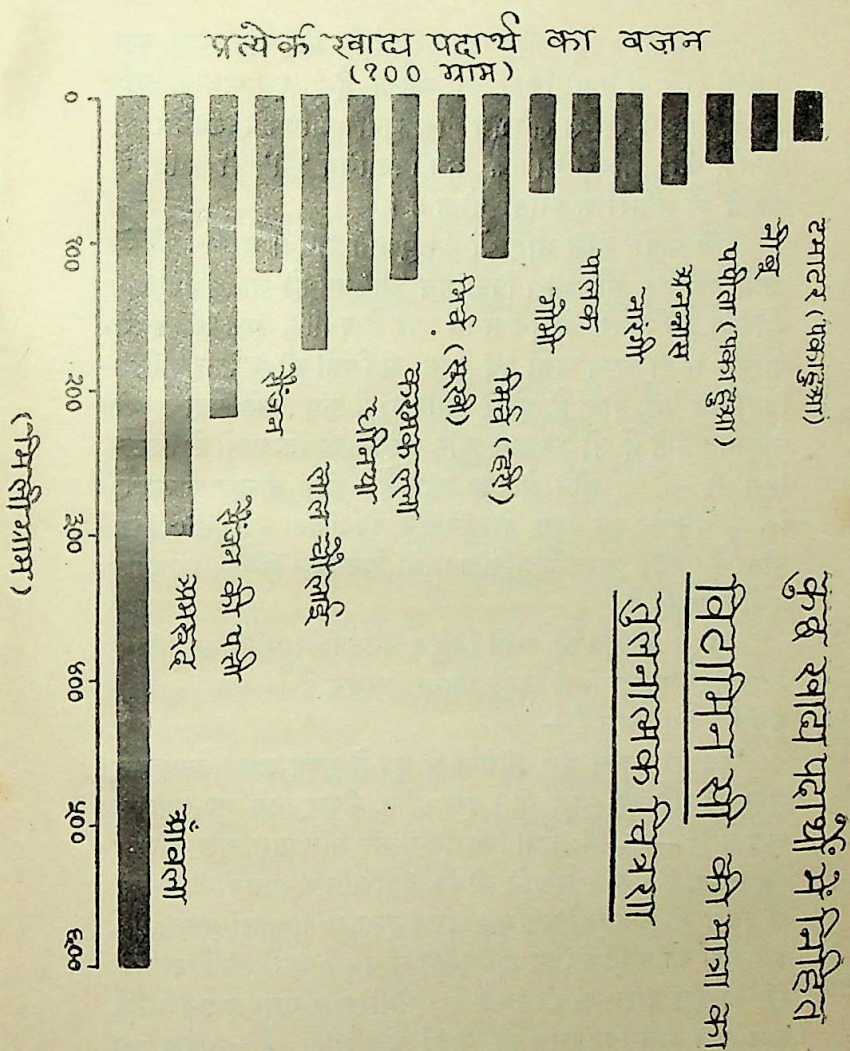
चित्र संख्या १६

बहुतायत से होता है और जनवरी से अप्रैल तक यह फल असीम राशि में प्राप्त किया जा सकता है। इस फल के ताजे रस में संतरे के रस से लगभग बीस गुना अधिक विटामिन सी होता है और आंवले का एक फल विटामिन 'सी' की मात्रा में एक से दो सन्तरों के बराबर होता है।

ताजे फलों, शाक भाजियों को सुखाने अथवा गरम करने से उनमें उपस्थित अधिकांश विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है। परंतु आंवला इस विषय में इन सबसे. परे है क्योंकि एक तो इसमें प्रारम्भ से ही अन्य फलों एवं शाक भाजियों की अपेक्षा अधिक विटामिन 'सी' होता है, दूसरे आंवले में कुछ ऐसे पदार्थ भी उपस्थित होते हैं जो उबालने और सुखाने की क्रियाओं से विटामिन सी की नष्ट होने से रक्षा करते हैं। और तीसरा कारण है कि आंवले का रस बहुत ही अम्लीय प्रतिक्रिया (acidic) का होता है। और अम्लीय प्रतिक्रिया भी विटामिन सी पर रक्षात्मक प्रभाव रखती है।

एतदर्थ आंमले को उसमें निहित विटामिन 'सी' का अधिक नाश हुए बिना अधिक दिनों रखना सम्भव है। एक सरल और उत्तम उपाय निम्न है—

फल को कुचल कर शीघ्रता से धूप में सुखा डालो तत्पश्चात् सूखे हुए गूदे को पीस लो। इस भाँति तैयार किए हुए आंवला चूर्ण में १०—१६ मि० ग्राम विटामिन 'सी' प्रति ग्राम चूर्ण में पाया जा सकता है। और सुखाने की क्रिया मेंअधिक सावधानी बरतने से इससे भी अधिक विटामिन रक्षित दशा में पाया जा सकता है। इस चूर्ण को अधिक दिन तक रखने से इसमें उपस्थित विटामिन सी का कुछ अंश नष्ट हो जाता है। गर्मी और नमी से इस भाँति नष्ट होने वाले विटामिन की मात्रा बढ़ जाती है। ताहम इस भाँति तैयार किया गया आंवला चूर्ण कई महीनों तक विटामिन

'सी' प्राप्त करने का एक उत्तम साधन है। इसे जितने अधिक सूखे और ठंडे स्थान में सम्भव हो सके रखना चाहिये।

'दूसरा उपाय आंवले को कुछ मिनट तक पानी में उबाल कर नमक के गाढ़े घोल में रखने का है। इस भाँति भी इसमें उपस्थित विटामिन का काफी भाग रक्षित रहता है। आंवले को अधिक उबालने, भूनने, तेल में तलने एवं उसमें अधिक मसाले आदि डालने से उसमें निहित विटामिन 'सी' का अधिकांश भाग नष्ट हो जाता है।'

'आँवला भारत में बहुत पुराने समय से एक मूल्यवान फल गिना जाता है—और बहुत-सी वैदिक औषधियों एवं टॉनिकों में मुख्य वस्तु है। इस महायुद्ध में ऐसे स्थानों पर जहाँ फलों आदि की कमी थी—आँवला चूर्ण की गोलियों से इस प्रश्न को हल किया गया था। और इस भाँति युद्ध में आँवला चूर्ण से बनी हुई गोलियाँ सिपाहियों को विटामिन 'सी' की उपयुक्त मात्रापहुँचाने के लिए प्रयोग की गई थीं। सन् १९४० में हिसार दुर्भिक्ष क्षेत्र में जब स्कर्वी रोग फैला था—तब वहाँ आँवले का ताजा फल एक उत्तम स्कर्वी नाशक औषधि की भाँति सफलता के साथ प्रयोग किया गया था।'

आँवला और विटामिन 'सी' के विषय में हम अपने आपको इतने विस्तार में जाने से न रोक सके। कारण प्रत्यक्ष है।

यूनिट

इस विटामिन की एक अन्तर्राष्ट्रीय यूनिट ·०५ मिली ग्राम विशुद्ध एसकार्बिक एसिड मानी गई है।

दैनिक आवश्यकता

विटामिन सी की औसत दैनिक आवश्यकता लगभग

१००० यूनिट है जो कि निम्न पदार्थों में से किसी से भी, दिए गए परिमाण में प्रयोग करने से प्राप्त हो सकती है। दो नारंगी अथवा दो नीबू, अथवा लगभग ५० सी० सी० (घनसेन्टीमीटर) नारङ्गी या नीबू का रस, चार बड़े केले अथवा एक आँवला।

अन्य विटामिनों की भांति इस विटामिन की आवाश्कता भी शरीर की विभिन्न दशाओं में भिन्न हो सकती है। इसका अनुमान निम्न तालिका से किया जा सकता है।

विटामिन 'सी' की दैनिक आवश्यकता:—

अवस्था	दैनिक आवश्यकता मि० ग्राम में	दैनिक आवश्यकता अं० यूनिट में
छोटेबच्चे	५०–१००	१०००–२०००
५ वर्ष तक की आयु के बच्चे	१००–१५०	२०००–३०००
युवा	७५	१५००
गर्भवती स्त्री एवं माता	१००–३००	२०००–६०००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पाँच वर्ष तक की आयु के बच्चों को युवा पुरुषों की अपेक्षा अधिक विटामिन 'सी' की आवश्यकता होती है। गर्भवती स्त्री एवं धात्री माता को और भी अधिक विटामिन 'सी' की आवश्यकता है। इस लिए इन अवस्थाओं में भोजन पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है ताकि उन्हें यह खाद्य तत्व भी उपयुक्त परिमाण में मिलता रहे। यहाँ संक्षेप में यह बता देना उचित होगा कि दूध यद्यपि अन्य खाद्य तत्वों की दृष्टि से एक आदर्श भोजन है ताहम जहाँ तक विटामिन 'सी' का सम्बन्ध है यह दूध में बहुत

कम होता है। इसी लिए बच्चे के दो मास का होने के बाद उसे किसी न किसी रूप में विटामिन 'सी' दिया जाना चाहिए। इस भाँति दिये गए विटामिन 'सी' की मात्रा कम-से-कम १००-यूनिट के लगभग प्रतिदिन होनी चाहिए। लगभग तीन (Tea spoon full) छोटे चम्मच सँतरे अथवा टिमाटर के रस के प्रयोग से विटामिन सी की उपर्युक्त मात्रा बच्चे को दी जा सकती है। अन्य फलों के रसों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

विटामिन 'सी' का आत्मीकरण होने के बाद यह हमारे शरीर के कुछ विशेषअंगों में एकत्र होता है। मुख्यत: यह उपवृक्क (suprarenals) नामक ग्रन्थियों में सँग्रहित होता है। यकृत और गुर्दों में भी पाया जाता है। कुछ जानवरों के शरीर में विटामिन 'सी' स्वत: निर्मित होने की क्षमता रखता है। उन्हें भोजन में विटामिन 'सी' की आवश्यकता नहीं होती, अपने लिए आवश्यक विटामिन 'सी' उनके शरीर में गुर्दों के ऊपर स्थित उपवृक्क नामक ग्रन्थियों में निर्मित हो जाता है। उदाहरण के लिए ऐसे जानवरों में कुत्ता और चूहा मुख्य हैं। परन्तु मनुष्य के शरीर में उपस्थित उपवृक्क ग्रँथियों में विटामिन 'सी' के इस भाँति निर्माण करने की शक्ति नहीं है इस लिए हमें विटामिन 'सी' की दैनिक आवश्यकता के लिए पूर्णतया अपने भोजन पर ही आश्रित रहना पड़ता है।

स्थायित्व

विटामिन 'सी' नितांत विशुद्धावस्था में रवेदार रूप में स्थायी है और अम्लीय प्रति क्रिया के घोल में भी काफी स्थायी होता है। फलों एवं शाक भाजियों में केवल ताजो दशा में ही यह विटामिन उपस्थित रहता है। रखने, सुखाने और पकाने

से इनमें निहित विटामिन 'सी' का अधिकांश नष्ट हो जाता है। क्षारीय प्रतिक्रिया (alkalinity) में भी यह विटामिन शीघ्रता से नष्ट हो जाता है।

विटामिन 'सी' के कार्य एवं हीनता जनित दोष

विटामिन 'सी' हमारे शरीर की ओषजनीकरण-क्रियाओं (oxidative processes) से सम्बन्धित है। इनके पूर्ण रूप से ठीक दशा में होते रहने के लिए इस खाद्य तत्व की उपस्थिति नितांत आवश्यक है। इसकी हीनता होने पर इन क्रियाओं में व्याघात होता है। और हमारे शरीर के अंगों के स्वास्थ्य का ह्रास होने लगता है।

यह खाद्य तत्व हमारे शरीर को संक्रामक रोगों का सामना करने की शक्ति प्रदान करता है। इसकी हीनता होने पर हमारा शरीर इन रोगों का शिकार आसानीसे हो सकता है।

हमारे शरीर में लगे घावों आदि के शीघ्र भरने और अच्छे होने के लिए जिन कोषों की आवश्यकता होती है, उनके निर्माण के लिए भी इसकी उपस्थिति आवश्यक है। इसकी हीनता होने पर घावों के भरने और अच्छे होने में विलम्ब होता है।

दाँतों एवं अस्थियों के पूर्ण निर्माण के लिए भी यह विटामिन आवश्यक है। इसकी कमी से अस्थिविकृति सरीखे कुछ दोष उत्पन्न हो सकते हैं।

यह खाद्य हमारे शरीर में रक्तनिर्माण से भी कुछ सम्बन्ध रखता है। सम्भवतया यह रक्त में उपस्थित रक्त-कणों की उपयुक्त संख्या के लिए उत्तरदायी है। रक्ताल्पता में यह विटामिन रक्तकणों की संख्या को बढ़ाता है। और उनके अधिक होने पर उनकी संख्या कम करने में सहायता करता है।

हीनता

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि इसकी हीनता से शरीर की ओषजनीकरण क्रियाओं में व्याघात होता है और हमारे शरीर के तन्तुओं के स्वास्थ्य का ह्रास होने लगता है। रक्त केशिकाएँ हमारे शरीर के सब से कोमलतम् अँग होने के कारण सब से प्रथम और अधिक प्रभावित होती हैं। उनकी पतली दीवारों के कोषों (cells) को एक दूसरे से बाँधने वाले पदार्थ (cement substance) का ह्रास होने लगता है और इस भाँति उनकी दीवालें क्षीण हो जाती हैं और ज़रा से ही दबाव से फूट जाने के कारण शरीर के अंग प्रत्यंगों में विशेष कर त्वचा के नीचे की केशिकाओं एवं मसूड़ों आदि से रक्त स्राव होने लगता है। विटामिन 'सी' की पूर्ण हीनता से उत्पन्न हुई इस दशा को 'स्कर्वी' कहते हैं। इसका उल्लेख हम अधिक विस्तार के साथ करेंगे—

स्कर्वी

स्कर्वी भी एक हीनता जनित रोग है। भोजन में एक विशेष खाद्य तत्त्व के अभाव से उत्पन्न हुए इस रोग में मानसिक हीनता, रक्ताल्पता, मसूड़ों की कमज़ोरी, मुँह में घाव हो जाना और शरीर में जगह-जगह रक्तस्राव होना मुख्य लक्षण हैं।

कारण

पहले लोगों का विश्वास था कि स्कर्वी रोग कुछ विषमय पदार्थों के कारण होता था। कुछ लोग पोटेशियम के खनिज

लवण एवं अन्य क्षारीय संयोगिकों की हीनता को स्कर्वी का कारण बताते थे। अन्ततः होल्स्ट (Holst) एवं फ्रॉहलिक-(Frohlich) तथा उनके अन्य साथियों ने अपने क्रियात्मक प्रयोगों द्वारा यह निर्विवाद सिद्ध कर दिया कि यह रोग भोजन में स्कर्वी नाशक खाद्य तत्त्व अथवा विटामिन 'सी' की हीनता से उत्पन्न होता है। इस भाँति स्कर्वी प्रकट होने में लगभग ४-८ मास का समय लग जाता है।

रक्त केशिकाओं की दीवालें क्षीण हो जाती हैं जैसा कि पहले बताया जा चुका है। परिणामतः त्वचा के नीचे, अस्थिवेष्ट अथवा अस्थावरक (Periosteum) के नीचे एवं जोड़ों में रक्त स्राव होने लगता है। कभी कभी हृदयावरण (Pericardium) एवं फुफ्फु सावरण (Pleura) में भी रक्त स्राव हो सकता है। रक्तकणों के विकास और वृद्धि में व्याघात होता है परिणामतः रक्ताल्पता उत्पन्न हो जाती है।

अस्थियों के विकास और वृद्धि में भी बाधा होती है।

लक्षण

इस रोग का प्रारम्भ बहुत ही धीरे-धीरे होता है। सबसे प्रथम रोगी को कमज़ोरी, आलस्य और थकान का अनुभव होने लगता है। खड़े होने पर चक्कर आने लगते हैं और मसूड़ों से साधारण रगड़ लगने से ही रक्त निकलने लगता है। रोगी बार-बार पैरों में दर्द की शिकायत करता है और पिंडलियों की माँस पेशियाँ सख्त हो जाती हैं। धीरे-धीरे वह व्यक्ति रोगी मालूम पड़ने लगता है। चेहरा पीला पड़ जाता है, आँखों की चमक जाती रहती है और उनके चारों ओर काले घेरे पड़ जाते हैं।

उपर्युक्त लक्षण रोग के मुख्य लक्षणों के प्रकट होने से कुछ दिन से लेकर कुछ सप्ताह पहले उत्पन्न होते हैं। मसूड़े सूजने लगते हैं। धीरे-धीरे सूजन बढ़ती जाती है यहाँ तक कि अन्त में
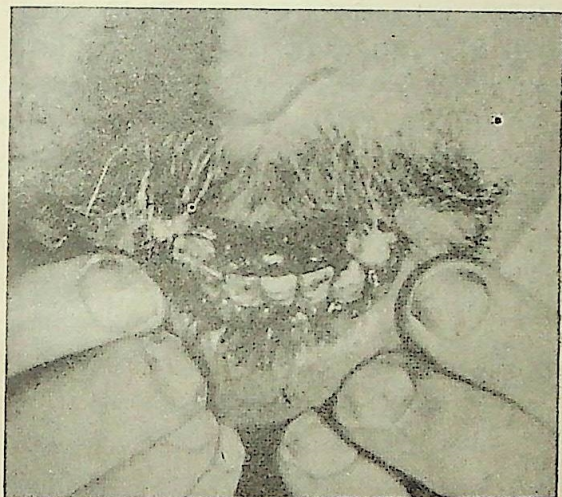
स्कर्वी के रोगी का मुँह

चित्र नं० १७

बढ़ते-बढ़ते ये चारों ओर से दाँत को घेर कर छिपा लेते हैं। इनका रंग कुछ नीलापन लिए हुए होता है। तत्पश्चात् मसूड़ों में विशेषकर किनारों पर घाव हो जाते हैं और इनसे एक दुर्गन्ध युक्त तरल पदार्थ बहा करता है जो कि रोगी के श्वास को बहुत ही दुर्गन्धयुक्त बना देता है। अन्त में दाँत ढीले होकर गिर जाते हैं।

मसूड़ों में उत्पन्न उपर्युक्त लक्षणों की भाँति ही मुख्य लक्षण

त्वचा में एवं त्वचा के नीचे उपस्थित तंतु में रक्तस्राव का होना है। ये लक्षण दो प्रकार के हो सकते हैं।

(१) सबसे प्रथम दोनों पैरों के बालों की जड़ों के पास मच्छरों के काटे हुए से छोटे-छोटे लाल अथवा कुछ बैंजने से रंग के दाने निकलते हैं। इनके कारण त्वचा कुछ खुरदरी सी हो जाती है। ये लगभग एक सप्ताह तक इसी भाँति रहते हैं तत्पश्चात् धीरे-धीरे ये हरे से रंग के धब्बों में परिणित होने
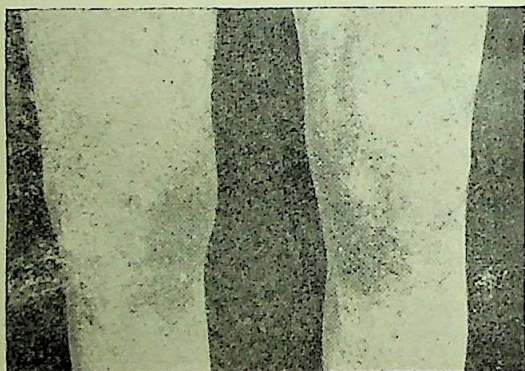
चित्र नं० १८
स्कर्वी में त्वचा पर उत्पन्न लक्षण

लगते हैं जो शीघ्र ही गायब हो जाते हैं। इनके इस भाँति गायब होने के बाद खाल थोड़ी सी उधड़ने सी लगती है। क्योंकि इस प्रकार के यह दाने बहुधा कपड़ों आदि की साधारण रगड़ से ही उत्पन्न होते हैं इसलिए सबसे प्रथम ये टांगों की बाहर की ओर एवं जाँघों के सामने और बाहर की ओर निकलते हैं। किन्हीं किन्हीं स्थानों पर ये दाने आपस में एक दूसरे से मिल कर चकत्ते से बना लेते हैं। रोग अधिक बढ़ी हुई दशा में होने पर कभी-

कभी साधारण दबाव से ही उस स्थान पर घाव उत्पन्न हो जाता है। इस भाँति उत्पन्न हुए घावों के किनारे मोटे होते हैं—उनसे रक्त निकला करता है और एक दुर्गन्ध युक्त तरल पदार्थ उनसे बहता है।

(२) दूसरे प्रकार के ये लक्षण त्वचा के नीचे उपस्थित वसामय सौत्रिक तन्तु अथवा माँस पेशियों के बीच में उपस्थित तन्तु में रक्तस्राव होने के कारण उत्पन्न होते हैं। ये या तो स्वतः उत्पन्न हो सकते हैं अथवा किसी स्थान पर चोट लगने पर उस जगह उत्पन्न हो जाते हैं और रूप, स्थान एवं विस्तार में बहुत भिन्न होते हैं। सबसे अधिक पैरों में उत्पन्न होते हैं जहाँ कभी-कभी तो काफी विस्तृत सूजन आ जाती है। ये स्थान भूरे से लाल रंग का हो जाता है। छूने और दबाने से दर्द होता है और उंगलियों से दबाने से गढ़े पड़ जाते हैं। इनके ऊपर की त्वचा लाल चमकदार और गर्म होती है। पैरों के बाद ये लक्षण बहुधा घुटने के पीछे एवं कोहनी के सामने, तथा टखनों के पास और निम्नहनु की मांस पेशियों के नीचे उत्पन्न होते हैं। इन स्थानों पर भी उसी भांति सूजन आ जाती है और इन स्थानों पर उपस्थित प्राकृतिक गढ्ढे भर जाते हैं तथा आस पास की सन्धियों के कार्यों में व्याघात होता है।

शरीर के अन्य अंगों में रक्तस्राव के कोई विशेष अधिक अवसर नहीं आते परन्तु श्लैष्मिक कलाओं (Mucous membranes) से बहुधा रक्त-स्राव हो सकता है। इनमें से नकसीर फूटना तथा मुंह की श्लैष्मिक कला से खून का निकलना बहुत साधारण है। रोग के बीच में ही अथवा उसके साथ अतिसार (diarrhoea) भी हो सकता है। वमन कफ अथवा पेशाब में खून आना बहुत ही कम पाया जाता है हृदयावरण (Pericardium) एवं फुफ्फुसावरण (Pleura) में भी रक्तस्राव का

वर्णन किया गया है। कभी-कभी नेत्रों को कनीनिका के नीचे भी (Sub-Conjunctival) रक्तस्राव हो सकता है।

जैसे-जैसे रोग बढ़ता जाता है रक्ताल्पता (anaemia) भी रोग का एक मुख्य भाग होती जाती है। रक्तकणों की संख्या घट जाती है। साधारणतया एक स्वस्थ्य मनुष्य के रक्त में लगभग पचास लाख रक्तकण प्रतिघन मिलीमीटर रक्त में होते हैं। इस रोग में कभी-कभी तो घट कर केवल २० लाख प्रतिघन मिली-मीटर रह जाते हैं। रक्ताणुओं का आकार एवं उनका रूप एक दूसरे से बहुत भिन्न हो जाता है। रक्ताणुओं में उपस्थित "हीमो-ग्लोबिन" नामक पदार्थ लगभग उनकी संख्या से हुई कमी के अनुपात के अनुसार ही घट जाता है।

पाचक संस्थान के लक्षण बहुत भिन्न होते हैं। रोगी की भूख में कोई विशेष कमी नहीं होती परन्तु उसे अपच रहता है। बहुधा रोगी को कब्ज रहता है परन्तु कभी-कभी अपच-जनित अतिसार भी हो सकता है।

निदान

मुख्य लक्षण प्रकट होने पर तथा कई रोगी एक साथ पाये जाने पर रोग का निदान आसान होता है। इक्के-दुक्के रोगियों के निदान में कुछ कठिनाई अवश्य होती है।

रोग का निदान ठीक होने पर तथा उचित चिकित्सा होने पर रोग सुखसाध्य है। रोगी का भविष्य त्वचा में उत्पन्न लक्षणों की भीषणता पर इतना निर्भर नहीं करता जितना कि उसके आन्तरिक अंगों की दशा पर। हृदय एवं फेफड़ों का प्रभावित होना बुरे लक्षण हैं। अतिसार एवं अधिक रक्तस्राव भी रोगी के भविष्य को चिन्तास्पद बना देते हैं।

चिकित्सा

सबसे उत्तम तो रोग को न होने देना ही है। इसके लिए हमारे भोजन में लगभग २५-५० मिलीग्राम विटामिन 'सी' (५००-१००० यूनिट) का होना आवश्यक है। इसके प्राप्त करने के सरल साधन पहले ही बताए जा चुके हैं।

रोग के प्रकट होने पर शीघ्र ही विटामिन 'सी' की उपयुक्त मात्रा रोगी को देनी चाहिए। ये या तो विशुद्धावस्था में प्रयोग-शाला में संगठित रूप में दिया जा सकता है अथवा नींबू, नारंगी संतरे, आमला, आदि फलों के रससे प्राप्त किया जा सकता है। यदि रोगी को इसे ५ दिन तक प्रतिदिन एक हजार मिली-ग्राम विशुद्ध विटामिन 'सी' (एसकार्बिक एसिड) दिया जाय तो रोगी की दशा में बड़ी शीघ्रता से सुधार होता है। इसके बाद कम से कम २००० 'यूनिट' अथवा २०० मि० ग्राम विटामिन 'सी' प्रतिदिन फलों के रस के रूप में रोगी को तब तक देना चाहिए जब तक कि वह पूर्णतया स्वस्थ नहीं हो जाता। रक्ता-ल्पता के लिए लौह प्रयोग करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है क्योंकि रोग अच्छा होने पर रक्तल्पता स्वतः अत्यन्त शीघ्रता के साथ दूर हो जाती है। परन्तु विटामिन 'सी' के साथ-साथ अन्य विटामिनों का भी उपयुक्त मात्रा में दिया जाना उत्तम है क्योंकि सम्भव हो सकता है कि रोगी में विटामिन 'सी' की हीनता के साथ-साथ किसी अन्य खाद्यतत्व की भी हीनता हो।

मसूड़ों को हाइड्रोजन पर ऑक्साइड की सहायता से साफ़ रखना चाहिए।

उपस्कर्वी

अन्य खाद्य तत्वों की भाँति विटामिन 'सी' की पूर्ण हीनता से उत्पन्न हुए दोषों की अपेक्षा आंशिक हीनता जनित दोष

अधिक देखने में आते हैं। पूर्ण हीनता जनित लक्षणों की भाँति आंशिक हीनता जनित लक्षण स्वतः प्रकट नहीं होते। लक्षण रोगी पर कोई ऑपरेशन किए जानेपर अथवा कोई चोट आदि लगने पर प्रकट होते हैं। इस भाँति लगे घाव आदि बहुत देर में भरते हैं और उनसे रक्त क्षरण (Haemorrhage) अथवा रक्तस्राव होने की अधिक सम्भावना रहती है। ऐसे व्यक्ति जब कोई कड़ी वस्तु जैसे अमरूद आदि दाँतों से काटते हैं तो उनके मसूड़ों से खून निकलने लगता है।

ऐसे व्यक्ति के भोजन पर ध्यान देने से उसके भोजन में विटामिन 'सी' की कमी पाई जायगी। एतदर्थ इनके भोजन में उचित सुधार की आवश्यकता है।

बाल स्कर्वी

उपर्युक्त समस्त लक्षण केवल वयस्क आयु वाले स्त्री-पुरुषों में ही प्रकट होते हैं। बालकों में उनके शरीर की रचना और उसके कार्य वयस्क आयु वाले स्त्री पुरुषों की अपेक्षा भिन्न होने के कारण उनमें इसी के अनुसार लक्षण भी कुछ भिन्न प्रकट होते हैं।

कारण

रोग बहुधा आठ और बारह मास की आयु के बीच में प्रकट होता है। रोग लड़कों एवं लड़कियों दोनों में ही बराबर होता है। रोग का कारण युवा स्कर्वी की भाँति वहाँ भी भोजन में 'स्कर्वी नाशक' खाद्य तत्व की कमी ही है। बच्चों को दिये जाने वाले दूध को उबालने से उसमें उपस्थित इस विटामिन का अधिकांश नष्ट हो जाता है। सुखाए गए दूध एवं कृत्रिम भोजनों में भी विटामिन 'सी' अल्प मात्रा में ही होता है। इसलिये ऐसे भोजन पर आश्रित बच्चों को यह रोग आसानी से हो जाता है। परन्तु यहाँ हम यह कहना न भूलेंगे कि दूध में विटामिन 'सी'

की मात्रा सुरक्षित रखने के ध्यान से उसे न उबाल कर अन्य खतरे मोल लेना अधिक बुद्धिमानी न होगी। दूध को सदैव प्रयोग करने से पहले उबाल कर सुरक्षित बना लेना चाहिये। विटामिन 'सी' तो हम अत्यन्त सरलता के साथ फलों के रस के रूप में बाहर से भी दे सकते हैं।

कुछ ऐसे बालकों में भी यह रोग देखा गया है जो कि केवल स्तन पान पर ही आश्रित थे। यहाँ सम्भव हो सकता है कि इन बच्चों की माताओं के भोजन में इस खाद्य तत्व की कमी रही हो।

रोग के मुख्य लक्षण अस्थि संस्थान से अधिक सम्बन्धित हैं। अस्थावरण में रक्त संचार बढ़ जाता है तथा उसके नीचे अस्थि और अस्थावरण के बीच में अस्थावरक से रक्त क्षरण होने के कारण जमा हुआ खून एकत्र हो जाता है। परिणामतः प्रभावित अस्थि का अस्थावरण उससे दूर हट जाता है और कुछ मोटा हो जाता है। अस्थि क्षीण होकर बहुधा स्वतः टूट भी सकती है। शरीर की सन्धियों, विशेषकर लम्बी हड्डियों की सन्धियों में भी रक्त स्राव हो सकता है।

लक्षण

रोग का प्रारम्भ धीरे धीरे होता है। सबसे प्रथम बालक भोजन से इन्कार करने लगता है और क्लांत, खिन्न और चिड़-चिड़ा हो जाता है। बालक गोद में आने से इन्कार करता है। यों देखने से बच्चा स्वस्थ मालूम पड़ता है। कुछ समय के उपरान्त और मुख्य लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इनमें सबसे मुख्य है— बच्चों के पैरों में छुए जाने पर अथवा जरा से दब जाने से बहुत तीव्रतम् दर्द होता है इसके कारण केवल छूने के प्रयत्न को देख कर ही बच्चा बुरी तरह चीख उठता है। घुटने के पास जंघास्थि के निचले भाग में तथा पैर की हड्डी के ऊपरी सिरे में कुछ सूजन

भी हो सकती है। हाथ की हड्डियाँ बहुत कम प्रभावित होती हैं। इस सूजन के ऊपर की त्वचा तनी हुई और चमकदार होती है और उसमें भी कुछ सूजन आ जाती है परन्तु वह स्थान आस-पास के स्थानों से नरम नहीं होता। यदि कोई हड्डी टूट गई हो तो उसके अनुसार अन्य लक्षण प्रकट होते हैं। कभी-कभी आँख में रक्तस्राव होने के कारण पलकें बैंजनी रंग की होकर कुछ सूज
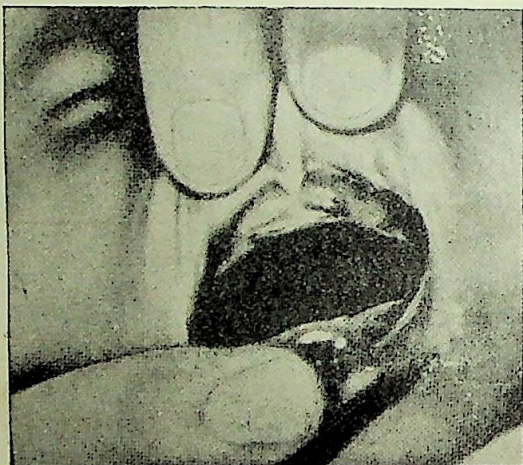
बाल स्कर्वी रोग में मसूड़े

चित्र नं० १६

सी जाती हैं। कभी-कभी पसली की हड्डियों, अक्षक (हँसली की हड्डी) तथा कपालास्थि के पास भी रक्तस्राव हो सकता है।

बाल स्कर्वी में बहुधा मसूड़ों में अधिक दोष नहीं उत्पन्न होते जब तक कि बच्चे के कुछ दांत न निकल आए हों। ऐसी दशा में वह मसूड़ा सूज कर कुछ बैंजने से रंग का हो जाता है। त्वचा एवं त्वचा के नीचे के तंतुओं में भी बहुत कम युवा स्कर्वी

के तरह के दोष उत्पन्न होते हैं। श्लैष्मिक कलाओं से रक्तक्षरण भी बहुत कम पाया जाता है। हां, मूत्र के साथ रक्त बहुधा देखा जा सकता है। अणुवीक्षण यन्त्र से मूत्र की परीक्षा करने पर लगभग प्रत्येक रोगी के मूत्र में रक्ताणु पाए जा सकते हैं।

ज्वर कोई विशेष नहीं होता। अधिक रक्तक्षरण होने पर तापमान कुछ बढ़ जाता है परन्तु १०२° से अधिक बहुत कम जाता है।

रक्त में उत्पन्न दोष जैसे कि युवा स्कर्वी के अन्तर्गत वर्णित किए गए हैं बिलकुल उसी भांति बाल स्कर्वी में भी उत्पन्न होते हैं।

निदान

यदि रोग के मुख्य लक्षण ध्यान में रक्खे जाएं तो रोग का निदान सरल है। उसे छूने का प्रयत्न करते ही बच्चे का चीखना, उसके पैरों में सूजन एवं उनमें दर्द तथा मसूड़ों की उपर्युक्त दशा रोग की उपस्थिति में कोई सन्देह नहीं छोड़ते। परन्तु सब केस इतने स्पष्ट नहीं होते। बहुधा ऐसे रोगी जिनकी दशा साधारण होती है चिकित्सक की आंख से निकल सकते हैं। इनमें कभी-कभी अकेला लक्षण बच्चे के पैर में दर्द का होना होता है, वह भी जब बच्चे को उठाया जाय अथवा नहलाने आदि का प्रयत्न किया जाय। किन्ही किन्ही में इसके साथ साथ एक आध मसूड़े में भी लक्षण पाये जा सकते हैं। और किसी किसी में तो केवल मूत्र में रक्त ही पाया जाता है। ऐसे रोगियों के निदान में निम्न दो बातें सहायता करेंगी—

प्रथम तो रोगी के भोजन पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाएगा कि उसका भोजन स्कर्वी उत्पादक है और उनमें स्कर्वी नाशक खाद्य तत्व की नितांत हीनता है।

दूसरी परीक्षा विटामिन 'सी' देकर की जा सकती है। यदि उपस्थित लक्षण सचमुच ही स्कर्वी के प्रतीक हैं तो विटामिन 'सी' के कुछ दिन के व्यवहार से ही लक्षणों में आशातीत लाभ होगा अन्यथा नहीं।

परिणाम

यदि रोग का निदान होकर रोगी की उचित चिकित्सा प्रारम्भ कर दी जाए तो रोगी का भविष्य अत्यन्त आशाजनक है। उसके भोजन में उचित सुधार करने पर जादू की तरह लाभ होता है। मृत्यु यदि कभी होती है तो आमतौर से रोग के अन्तर्गत सहसा किसी अन्य रोग के हो जाने पर होती है। उदाहरणतः न्युमोनिया, अतिसार, सहसा अधिक रक्तक्षरण तथा हृदय की गति का बन्द होजाना रोगी के भविष्य को चिन्तास्पद बना देते हैं और उसकी मृत्यु का कारण हो सकते हैं।

चिकित्सा

सबसे प्रथम तो रोग की भीषणता कम करने के लिए रोगी को ५०-१०० मिलीग्राम विटामिन 'सी' मुँह द्वारा टेबलेट के रूप में उसे कुचल कर प्रति दिन दो-तीन दिन तक देना चाहिए। साथ ही साथ भोजन में उचित सुधार करना चाहिए। संतरे व टमाटर आदि का रस और भुने हुए आलुओं का प्रयोग करना चाहिए। रोग की अधिक तीव्र दशा में 'एसकार्विक एसिड' इन्जेक्शन द्वारा सीधा रक्त में पहुँचाया जा सकता है।

रोगी बालक की परिचर्या में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। बालक के कपड़े बहुत तंग न होने चाहिए वे ढीले और इस भाँति बने होने चाहिए कि आसानी से उतारे और पहिनाए जा सकें। बच्चे को हाथों की अपेक्षा किसी गद्दी पर लेकर उठाना चाहिए। रोगी के पैरों को रुई में रखकर ऊपर से एक

हलकी सी पट्टी लपेटने से उन्हें काफी सहारा मिलता है और रोगी की तकलीफ कम हो जाती है।

इस भाँति अब यह स्पष्ट है कि विटामिन 'सी' हमारे भोजन का एक कितना आवश्यक अँग है। इसकी हीनता से उत्पन्न हुए दोषों से भी हम परिचित हो गए हैं। अब हम अपनी सूची में बचे हुए सब से अंतिम विटामिन का उल्लेख बहुत ही संक्षेप में करेंगे। यहाँ हमारा अभिप्राय विटामिन 'पी' से है।

विटामिन पी

आज से कुछ वर्ष पहले यह खाद्य तत्त्व विटामिन 'सी' का ही अन्श समझा जाता था। केवल कुछ वर्ष से ही यह विटामिन 'सी' से बिलकुल पृथक् और भिन्न खाद्य तत्व माना जाने लगा है।

अन्य वैज्ञानिक आविष्कारों की भाँति इस खाद्य तत्व का अनुसन्धान भी एक घटना-चक्रपर अवलम्बित है। कुछ वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों और अनुभवों के बीच यह देखा कि स्कर्वी रोग के कुछ रोगियों में एसकार्बिक एसिड (विशुद्धतम विटामिन 'सी') की अपेक्षा ताजे नीबुओं के रस से अधिक और शीघ्र लाभ हुआ। परिणामतः उन्होंने यह सोचना प्रारम्भ कर दिया कि अवश्य ही नीबू के रस में विटामिन 'सी' से भिन्न कोई अन्य खाद्य तत्व उपस्थित है, जिसकी कमी विटामिन 'सी' की कमी के साथ-साथ स्कर्वी के उन रोगियों में थी और इसी लिए एसकार्बिक एसिड की अपेक्षा नीबू के रस में अधिक और शीघ्र लाभ हुआ।

बस यहीं से हमारे इस नए खाद्य तत्व विटामिन 'पी' की जन्म-कथा प्रारम्भ होती है।

जहाँ तक इसके कार्यों का सम्बन्ध है—यह सोचा जाता है कि रक्त केशिकाओं में उत्पन्न हुए दोषों के लिए इस नए खाद्य-तत्व की हीनता ही उत्तरदायी है।

इसके विषय में अभी इससे अधिक कहना असामयिक होगा।

उप संहार

पिछले प्रकरणों में हम प्रत्येक विटामिन की विस्तृत विवेचना कर चुके हैं। पाठक विविध विटामिनों के रसायनिक उपादान, उद्गम, उनके कार्य, दैनिक आवश्यकता और हीनता जनित दोषों से पूर्णतया परिचित हो गए हैं। अब हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं—कि हमारे बच्चे क्यों स्कूल जाने की उमर तक पहुंचते ही—दुबले पतले नजर आने लगते हैं। उनके मुख-मण्डल की प्रकृति दत्त सुन्दर आभा विलुप्त होकर उसके स्थान पर एक अजीब सी क्लांति, खिन्नता और उदासी टपकने लगती है। नेत्रों की ज्योति और कनीनिका की सुन्दर आभा धुंधली हो जाती हो। अपने कार्यों में उनका स्वाभाविक उत्साह और उत्सुकता की अपेक्षा एक अजीब सी शिथिलता रहती है। उनकी विकृत अस्थियाँ, टेढ़े-मेढ़े हाथ पैर, झुकी हुई कमर, अस्वस्थ दांत, मन्द बुद्धि और अपूर्ण वृद्धि हमारी अज्ञानता जनित गलतियों के जीते जागते उदाहरण हैं।

जब भारत की गर्भवती एवं धात्री माताओं का भोजन ही अपूर्ण होगा तो हम कैसे आशा कर सकते हैं कि हमारे देश में एक बार फिर राम, अर्जुन, कृष्ण, बुद्ध, टैगोर और गांधी पैदा हों। भले ही भावुक पाठक इन्हें ईश्वर का अवतार और अंश कहें—पर वैज्ञानिक मस्तिष्क इसे मानने को तैयार नहीं।

हमारे देश में हीनता जनित रोगों का विस्तार वेग से हो रहा है। गत महायुद्ध ने तो जलती आग पर घी छिड़कने का

काम किया है। हिसार और बंगाल के आंसू अभी गीले ही हैं।

पर वाहरे हम भारतीय ! कि अब भी हमारे कानों पर जूँ नहीं रेंगती—

अधिकांश तो गरीबी के कारण—पर थोड़े से जो गरीबी के अभिशाप से परे हैं वे अपनी रूढ़ि-गत परम्पराओं और अज्ञान-जनित दोषों को छोड़कर आज भी जब इन भीषण विभीषकाओं का तांडव नर्तन हमारी ही आंखों के नीचे हो रहा है—
आधुनिक आहार विज्ञान के सरल सिद्धांतों से लाभ नहीं उठाना चाहते।

हीनता

विटामिन भोजन के प्राण हैं-यह तो स्पष्ट हो चुका है। इनकी हीनता से बेरी बेरी, अस्थिविकृति, स्कर्वी, ऑस्टियो मलेशिया तथा अन्य कितने ही दोष उत्पन्न हो जाते हैं। बच्चों की अपूर्ण वृद्धि, स्त्रियों की विशेषकर गर्भावस्था के बाद उत्पन्न हुई अस्वास्थ्यकर दशा; संक्रामक रोगों का वेगपूर्ण विस्तार, आदि इन सब का मुख्य उत्तरदायित्व विटामिन हीनता पर ही है।

दैनिक आवश्यकता

विविध विटामिनों की दैनिक आवश्यकता का विस्तृत विवेचन भी प्रत्येक विटामिन के विशेष स्थलों पर किया जा चुका है। पर यहाँ हम एक बार फिर यह दोहरा देना चाहते हैं कि नन्हें बच्चों, बढ़ते हुए बालकों, गर्भवती स्त्रियों एवं धात्री माताओं को अधिक विटामिन की आवश्यकता होती है। और इनमें हीनता जनित दोष भी अधिक वेग एवं प्रखरता के साथ उत्पन्न होते हैं। पीछे के प्रकरणों में इनके विशेषस्थलों पर विभिन्न विटामिनों की दैनिक आवश्यकता उनकी अन्तर्राष्ट्रीय यूनिट, अथवा मि० ग्राम में दी गई है।

अब यह स्पष्ट है कि हमें अपने बच्चों बालकों और स्त्रियों के भोजन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। विभिन्न खाद्य-पदार्थों में उपस्थित बिटामिनों के पारिमाणिक अनुमान, वर्ग क्रम के अनुसार परिशिष्ट में दी गई तालिकाओं में दिये गये हैं। किसी व्यक्ति विशेष, परिवार अथवा समुदाय का भोजन निर्धारित करते समय विटामिनों के विषय में इनसे बहुत सहायता मिल सकती है।

आर्थिक अवस्था

हमारे देश में किसी भी कार्यक्रम को क्रियात्मक रूप में परिणित करना तो दूर--उस पर केवल विचार मात्र करने से पहले ही हमारी आर्थिक समस्या एक उग्ररूप धारण कर सामने आती है और हमारे प्रयासों की सफलता यदि असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य ही बना देती है।

परन्तु क्या हम केवल आर्थिक समस्या के कारण ही हताश हो बैठेंगे। और इतने आवश्यक विषय को यों ही एक ओर रख देंगे। यदि हम प्रयत्न करें तो केवल नाम-मात्र के खर्चे से ही अपने भोजन में अतीव सुधार कर सकते हैं। क्या आवश्यकता है कि हम अपनी विटामिन आवश्यकताओं के लिए विदेशों में निर्मित बहुमूल्य पदार्थों का ही प्रयोग करें।

ठीक है—हममें से बहुत से तो दूध का भी व्यवहार नहीं कर सकते। पर प्रकृति दत्त वनस्पतियाँ तो हमारे लिए दुर्लभ नहीं। थोड़े से ही प्रयास से हमें आसानी से—पालक, बथुआ, चौराई धनिया, टमाटर आदि मिल सकते हैं। थोड़े से प्रोत्साहन और समझाने से गाँव के काछी और माली अन्य सागों की अपेक्षा इनको अधिक परिमाण में उत्पन्न कर सकते हैं जिससे कि जन

साधारण को तो उनकी आवश्यकता की वस्तुयें मिल ही जायेंगी और साथ ही साथ उन्हें अच्छी आय भी हो सकती है ।

गांव और कस्बों में रहने वाले लोग तो बड़ी आसानी से उपर्युक्त और ऐसे ही अन्य खाद्य-पदार्थ थोड़े से ही परिश्रम से अपने घरों में ही उत्पन्न कर सकते हैं । अनाथालयों, विधवाश्रम, छात्रालयों एवं अन्य ऐसो ही संस्थाओं में भी ये पदार्थ उनके बग़ोचों में आसानो से उत्पन्न कर, वहां के विद्यार्थियों आदि के प्रयोग में लाये जा सकते हैं । यह सब पदार्थ विटामिन 'ए' प्राप्त करने के उत्तम साधन हैं ।

विटामिन 'बी' वर्ग के लिये तो हमें १ कौड़ी भी व्यय करने की आवश्यकता नहीं । यह तो केवल हमारे अज्ञान और आलस्य का परिणाम है कि हम विटामिन बी हीनता से ग्रसित हो जाते हैं । मशीन से साफ किये गये चावल के स्थान पर यदि हम घर में निकाले गए चावलों का उपयोग करें तो विटामिन 'बी' की हीनता का प्रश्न ही नहीं उठता । उसना चावल, अरवा चावल की अपेक्षा उत्तम है । यह विषय अपने विशेष स्थल पर पूर्ण विस्तार के साथ दिया गया है । आधुनिक व्यापारी हमारे इस अज्ञान से किस भांति लाभ उठाते हैं इसका अनुमान इस बात से लग सकता है कि प्रथम तो ये चावलों को मशीन से साफ़ कर उसकी भूमी के साथ समस्त बेरी बेरी अवरोधक तत्व निकाल लेते हैं—और फिर उसी भूसी को सुन्दर पैकिंग में बन्द कर मशीन से साफ़ हुए चावलों के खाने से उत्पन्न रोग की औषधि के रूप में ऊँचे मूल्य पर हमारे ही हाथ बेचते हैं ।

यदि ध्यान दिया जाय तो यह सब हमारे अज्ञान का ही परिणाम है—गेहूं एवं अन्य अनाजों का उपयोग करते समय हम इनमें उपस्थित समस्त विटामिन 'बी' को चोकर के साथ छान कर निकाल फेंकते हैं—इसमें तो पैसे की आवश्यकता भी

नहीं है। विदेशों से मनों चोकर सुन्दर डिब्बों में बन्द विभिन्न नामों के अन्तर्गत हमारे ही देश में ऊँचे मूल्य पर खरीद कर प्रयोग किया जाता है। और आश्चर्य तो यह है कि इन पदार्थों का प्रयोग करने वाले अधिकतर हमारे समाज के उच्चवर्ग के अपने आपको शिक्षित कहने की विडम्बना करने वाले लोग ही होते हैं। यहाँ तो व्यय करने की अपेक्षा अपना पैसा बचाया ही अधिक जा सकता है—पर हाँ, यदि हम ऐसा करना चाहें तब।

विटामिन 'सी' प्राप्त करना भी बहुत आसान है विशेष कर गाँवों और कस्बों और उनके निकट वर्ती नगरों के निवासियों के लिए। इस विषय में नीबू और आमला की उपयोगिता हम पहले ही बता चुके हैं। नीबू एक ऐसा पेड़ है जिसे हम बड़ी आसानी से भारत के किसी भी भाग में पैदा कर सकते हैं। और एक बार पेड़ बड़ा हो जाने पर उसके लिए किसी विशेष सावधानी या रक्षा की आवश्यकता नहीं। केवल एक या दो झाड़ ही एक औसत परिवार को उनकी विटामिन 'सी' की आवश्यकता की चिंता से मुक्त कर देंगे। यदि प्रत्येक भारतीय अपने बँगलों, घरों, क्वाटरों अथवा झोपड़ियों के सामने एक-एक पेड़ भी नीबू का लगा लें तो शीघ्र ही हम इस विटामिन के हीनता जनित दोषों से मुक्त हो सकते हैं।

'आँवला' विटामिन 'सी' में सबसे धनी फल है। भाग्य-वश भारत में 'आंमला' मट्टी के मोल मिल सकता है और जहाँ नहीं मिलता वहाँ इसके वृक्ष कुछ ही वर्षों में उत्पन्न किए जा सकते हैं। इसकी उपयोगिता का वर्णन पीछे किया जा चुका है।

रह गया विटामिन 'डी'। इसके लिए जब तक 'भारत' में सूर्य अपनी सम्पूर्ण प्रखरता के साथ इसी भाँति उदित होता रहेगा तब तक तो इसकी हीनता का प्रश्न ही नहीं उठना

चाहिए। पर यह तभी सम्भव है जब हम इस विषय सम्बन्धी साधारण नियमों को जानते होंगे।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि आर्थिक समस्या का हमारे लिए इस विषय में कोई विशेष महत्व नहीं। यह केवल हमारी अज्ञानता का ही नतीजा है जो हम इन अस्वस्थकर परिणामों को भुगत रहे हैं। भारत में तो धनी परिवारों में भी बच्चों और स्त्रियों में विटामिन हीनता जनित दोष उसी रूप में ही देखने में आते हैं जितने कि निर्धन परिवारों में। इस लिए आवश्यकता है भारत को इस विषय में शिक्षित बनाने की।

घर की स्त्रियाँ और विटामिन

हमारे भोजन में उपस्थित विटामिनों का अधिकांश तो हमारे घरों में स्त्रियों के भोजन बनाने के दूषित तरीकों के कारण ही नष्ट हो जाता है।

प्रथम तो हम कुछ पदार्थों के वे भाग जो विटामिनों में विशेष धनी होते हैं प्रयोग ही नहीं करते और उन्हें यों ही कूड़े के ढेर में फेंक देते हैं।

क्या हमारी बहिनें और माताएँ यह जानती हैं कि वे चोकर, करमकल्ले अथवा बन्दगोभी के बाहरी पत्तों, टमाटर के छिलकों, आलू के छिलकों, गाजर के ऊपरी भाग, मूली और चुकन्दर आदि की पत्तियों के साथ भोजन के कितने अमूल्य अवयवों को यों ही बेकार फेंक देती हैं। यदि वे यह जानती हों, तो अपने परिवार का न मालूम कितना धन और स्वास्थ्य बेकार नष्ट होने से बचा सकती हैं। क्या वे यह नहीं चाहतीं? पर उनकी अज्ञानता उन्हें ऐसा चाहते हुए भी उसका उलटा करने को ही बाध्य करती है।

उदाहरण के लिए बन्दगोभी के बाहरी हरे पत्तों में, जो

बहुधा फेंक दिए जाते हैं, इतना विटामिन 'ए' होता है कि वे इस विटामिन की समस्त दैनिक आवश्यकता को आसानी से पूरा कर सकते हैं।

निम्न तालिका के अध्ययन से उपर्युक्त तथ्य की और भी पुष्टि हो जाती है:—

फल या शाक	विटामिन	प्रयोग किया गया भाग		फेंका गया भाग	
		नाम	विटामिन परिमाण	नाम	विटामिन परिमाण
गोभी	ए	फूल	१	पत्तियाँ	३
मूली	ए	जड़ (मूल)	×	,,	४३-५३
टमाटर	ए	गूदा	८४-२१४	छिलका	१६००-५३००
सेव	सी	गूदा	१-६	,,	२-८२
चुकन्दर	सी	मूल	१-३	पत्ती	१०-२४
गाजर	सी	मूल	१-९	,,	२७
नीबू	सी	रस या गूदा	४-२०	छिलका	३०
नारंगी	सी	,,	५-१०	,,	२३-२६
प्याज	सी	गट्ठा	१-४॥	ऊपरी हिस्सा	२५
चुकन्दर	सी	मूल	४-१३	,,	११-३६
मूली	सी	,,	४-६	पत्ती	१३-३४
नाशपाती	सी	गूदा	¼-३	छिलका	२

गाजरों से तैयार किए गए भोजनों में उपस्थित विटामिन 'ए' और 'सी' की मात्रा लगभग दूनी की जा सकती है यदि गाजर का सबसे ऊपरी भाग जहाँ से पत्तियाँ निकलती हैं वह भी प्रयोग किया जाय। परन्तु बहुधा ये भाग काटकर फेंक दिया जाता है।

इसी भाँति हम गाजर, मूली, चुकन्दर, गोभी आदि की हरी पत्तियों के साथ बहुत अधिक विटामिन यों हीं फेंक देते हैं।

टमाटर के बाहरी छिलके की विटामिन की मात्रा उसके गूदे से २० गुनी और रस से १००० गुनी अधिक होती है।

उपर्युक्त सारिणी में विटामिन का परिमाण हमारी दैनिक आवश्यकता के प्रतिशत भाग में दिया है जो कि हमें उस पदार्थ के १ औंस से प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के लिए प्याज़ का ऊपरी हरा भाग (१ औंस) वि० सी की दैनिक आवश्यकता का २५% भाग पूरा करता है इसलिए ४ औंस से हमें हमारी विटा० 'सी' की पूरी दैनिक आवश्यक मात्रा प्राप्त हो सकती है। परन्तु दूसरी ओर यदि केवल गट्ठे का ही प्रयोग किया जाय तो हमें विटा० सी की हमारी दैनिक आवश्यकता पूरी करने के लिए लगभग २२-१०० औंस प्याज की आवश्यकता होगी।

इस भाँति अब यह स्पष्ट है कि हम अपने भोजन का कितना बहुमूल्य अंश यों ही बेकार नष्ट हो जाने देते हैं।

भोजन बनाने की क्रियाओं पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। केवल धोने मात्र से ही कुछ भोजनों में उपस्थित विटामिनों का अधिकांश धोअन के साथ ही निकल जाता है। यह विटामिन बी के प्रकरण में विस्तार पूर्वक दिया गया है। परन्तु यहां हमारा तात्पर्य यह नहीं कि बनाने से पहले भोजन का धोना और साफ़ करना बिल्कुल ही बन्द कर दिया जाए। परन्तु हमें उन दोष पूर्ण तरीकों को सुधारने की आवश्यकता है—जिन्हें कि हम बिना किसी हानि के बदल सकते हैं। उदाहरण के लिए बहुधा घरों में शाक भाजी पहले काट कर फिर मल मल कर धोई जाती है। अधिक उत्तम हो यदि हम उसे काटने अथवा छीलने के पहले ही अच्छी तरह से साफ कर लें जिससे उसे बाद

में धोने की आवश्यकता न हो। इस भाँति हम इन अमूल्य पदार्थों को नष्ट होने से बचा सकते हैं।

भोजन पकाने से भी विटामिन का कुछ अंश नष्ट हो जाता है। विटामिन 'सी' का अधिकांश भाग पकाने से नष्ट हो जाता है। कुछ तो नष्ट हो जाता है—और कुछ उस पानी के साथ फेंक दिया जाता है जिसमें बहुधा साग आदि उबाले जाते हैं। बन्द गोभी से किए गए प्रयोगों से विदित हुआ है कि विटामिन 'सी' का $\frac{9}{10}$ भाग केवल २० मिनट उबालने से नष्ट हो जाता है। टमाटर में इस भाँति नष्ट हुए भाग की मात्रा कम होती है। इसलिए विटामिन 'सी' के लिए ताजे फलों और कच्चे शाक भाजियों पर निर्भर रहना उत्तम है।

दूध को उबालने से उसमें उपस्थित विटामिन 'सी' का अधिकांश नष्ट हो जाता है। परन्तु यहाँ हम यह बताना आवश्यक समझते हैं कि दूध में विटामिन 'सी' की मात्रा सुरक्षित रखने के लिए उसे न उबाल कर अन्य खतरे मोल लेना अधिक बुद्धिमानी न होगी। दूध को सदैव प्रयोग करने से पहले सुरक्षित बना लेना चाहिए। विटामिन 'सी' तो हम अत्यन्त सरलता के साथ फलों के रस के रूप में बाहर से भी दे सकते हैं।

विटामिन 'बी' भी कुछ अंशों तक अधिक देर तक उबालने और पकाने से नष्ट हो जाता है। यह मात्रा क्षारीय प्रतिक्रिया में और भी बढ़ जाती है, इसलिए भोजनों में सोडा आदि डाल कर पकाने का रिवाज छोड़ देना चाहिए। इमली सरीखे अम्लीय प्रतिक्रिया वाले पदार्थ विटामिन बी और सी को नाश होने से बचाते हैं।

विटामिन 'ए' पर भोजन बनाने की साधारण क्रियाओं का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। मक्खन और घी को बहुत अधिक देर तक गरम करने से उसमें उपस्थित विटामिन 'ए' के

कुछ अंश का नाश हो जाता है। सूर्य की रोशनी के अधिक दिनों के प्रभाव से भी यह विटामिन कुछ कम हो जाता है। इसलिए कॉडलिवर आयल आदि सदैव काली बोतलों में रखे जाते हैं।

विटामिन 'डो' सबसे अधिक स्थायी विटामिन है।

सरकार का कर्तव्य

अब हमारे देश में अपनी सरकार है। हमें आशा है कि इस दिशा में भी वह अपना कर्तव्य पूरा करेगी। इस विषय सम्बन्धी अधिकाधिक प्रचार; विटामिनों का रासायनिक निर्माण; हीनता जन्य रोगों की निःशुल्क चिकित्सा और उचित भोजन व्यवस्था–इन सब पर हमारी सरकार को ध्यान देने की आवश्यकता है।

महान् कार्य

इस भाँति अब यह स्पष्ट है कि हम किस भाँति इन छोटे-छोटे सुधारों से इन अमूल्य खाद्य तत्वों की रक्षा कर अपने बच्चों और माताओं के स्वास्थ्य की रक्षा कर सकते हैं।

किसी भी देश की उन्नति और उत्थान उस देश की माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य पर ही निर्भर करता है। आज हमारा देश प्रगति और उन्नति की दौड़ में सबसे पीछे है। कारण बार–बार दोहराने की आवश्यकता नहीं।

यदि आप चाहते हैं कि आपके आर्यावर्त्त में एक बार फिर राम, अर्जुन, कृष्ण, बुद्ध, टैगोर और गांधी पैदा हों तो आवश्यकता है—अपने बच्चों एवं भावी माताओं को आहार-शास्त्र के साधारण नियमों से परिचित कराने की।

कार्य महान् है पर कठिन नहीं।

'विटामिन तालिका'

निम्न तालिका भारतीय सरकार के हेल्थ बुलेटिन नं० २३ के आधार पर बनाई गई है। विटामिन 'ए' की मात्रा १०० ग्राम खाद्य पदार्थ में उपस्थित विटामिन ए की अन्तर्राष्ट्रीय यूनिट में दी गई है। विटामिन 'बी१' की मात्रा का अनुमान भी इसी भाँति है। विटामिन 'सी' की मात्रा मिलीग्राम (प्रति १०० ग्राम खाद्य पदार्थ में उपस्थित) में दी गई है।

खाद्य पदार्थ	'ए'	'बी१'	'सी'
अन्न वर्ग			
बाजरा	२२०	११०	...
जौ	...	१५०	...
मक्का (हरी)	४२	...	४
मक्का (सूखी)	...	...	...
चावल अरवा			
—घर का कुटा	४	६०	...
—मशीन का कुटा	०	२०	...
चावल उसना			
—घर का कुटा	१५	६०	...
—मशीन का कुटा	०	७०	...

खाद्य पदार्थ	'ए'	'बी१'	'सी'
गेहूँ साबित	१०८	१८०	....
चना	३१६	१००	...
भुना हुआ चना	...	...	...
दाल वर्ग			
मसूर	४५०	१५०	...
मटर सूखा	...	१५०	...
मटर भुना हुआ	...	...	...
सोयाबीन	७१०	३००	...
शाकभाजी			
लाल चौलाई	२५०० से ११,००० तक	१०	१७३
काँटेवाली चौलाई	...	...	...
करमकल्ला	२०००	५०	१२४
अजवाइन का पत्ता	५८०० से ७५०० तक	अल्प	६२
धनिया	१०,४६० से १२,६०० तक	...	१३५
गन्धेला	१२,६००	...	४
सैंजन	११,३००	७०	२२०
मेथी	३६००	७०	...
चने का साग	६,७००	...	...
सलाद	२२००	...	...

खाद्य पदार्थ	ए	'बी१'	सी
पुदीना	२७००	...	...
पालक	२६०० से ३५०० तक	.. ...	.. ...
कन्द-मूल			
चुकन्दर	अल्प	७०	८८
गाजर	२००० से ४३ ० तक	६०	३
अरवी	४०	६०	अल्प
आलू	४०	२०	१७
मूली (लाल)	३	६०	१७
मूली (सफेद)			१५
शकर क़न्द	१०	...	२४
ज़मीकन्द	४३४	२०	अल्प
रतालू	...	२४	अल्प
अन्य तरकारियाँ			
पेठा (कुम्हेड़ा)	अल्प	२१	१
करेला	२१०	२४	८८
बैंगन	५	१५	२३
सेम	...	...	१२
गोभी	३८	११०	६६
भिंडी	५८	२१	१६
आमला	...	...	६००
मटर	१३६	१२०	६
तोरई	५६	२२	...

खाद्य पदार्थ	ए	'बी१'	सी
सिंघाड़ा	२०	...	...
चंचींडा	१६०	...	अल्प
टमाटर	३२०	२३	३१
मेवा			
बादाम	अल्प	८०	०
काजू	१००	...	०
मूँगफली	६३	३००	०
पिस्ता	२४०	...	०
अख़रोट	१०	१५०	०
मसाले			
इलायची	...	...	०
मिर्च (हरी)	४५४	...	१११
मिर्च (सूखी)	५७६	...	५०
लौंग (सूखी)	...	...	०
लौंग (हरी)	१२०	...	...
धनिया	१५७०	...	५
ज़ीरा	८७०	...	३
मेथी	१६०	...	०
राई	२७०	...	अल्प
काली मिर्च (हरी)	६८०	...	...
काली मिर्च (सूखी)	...	...	...
इमली	१००	...	३
फल			
सेब	अल्प	४०	२

खाद्य पदार्थ	'ए'	'बी१'	'सी'
केला	अल्प	५०	१
कमरख	२४०	...	...
रसभरी	...	...	४६
खजूर	६००	३०	अल्प
अंजीर	२७०	...	२
अमरूद	अल्प	...	२९९
कटहल	५४०	...	१०
मीठा नीबू	अल्प	...	३९
नीबू	२६	...	६३
आम (कच्चा)	१५०	...	३
आम (पक्का)	४८००	...	१३
नारंगी	३५०	४०	६८
पपीता (पक्का)	२०२०	...	४६
अनन्नास	६०	...	६३
केला (लाल)	३५०	...	...
अलूचा	२३०	४०	१
अनार	०	...	१६
चकोतरा	२००	...	२०
टमाटर (पक्का)	३२०	४०	३२
इमली	१००	...	३
माँस वर्ग			
गोश्त	अल्प	५०	२
केकड़ा	१३००	...	...

खाद्य पदार्थ	ए	'बी१'	सी
अंडा (बत्तक)	६००	...	...
अंडा (मुर्ग़ी)	१०००	...	...
मछली	२६	...	...
जिगर	२२,३००	१२०	२०
दुग्ध वर्ग			
दूध (गाय)	१८०	१७	२
दूध (भैंस)	१६२	...	...
दूध (बकरी)	१८२	...	...
दूध (औरत)	२०८	...	...
दही	१३०	...	...
मट्ठा	अल्प	...	...
विविध			
पान	६६००	...	५
कॉडलिवर ऑयल	६०,००० से २००,००० तक	...	०
हैलिबट लिवर ऑयल	३६००,०००	...	०
ख़मीर (सूखा)	११०	२,०००	...